वर्ष : 11, अंक : 02

अप्रैल-जून 2026

ISSN: 3107-9733

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

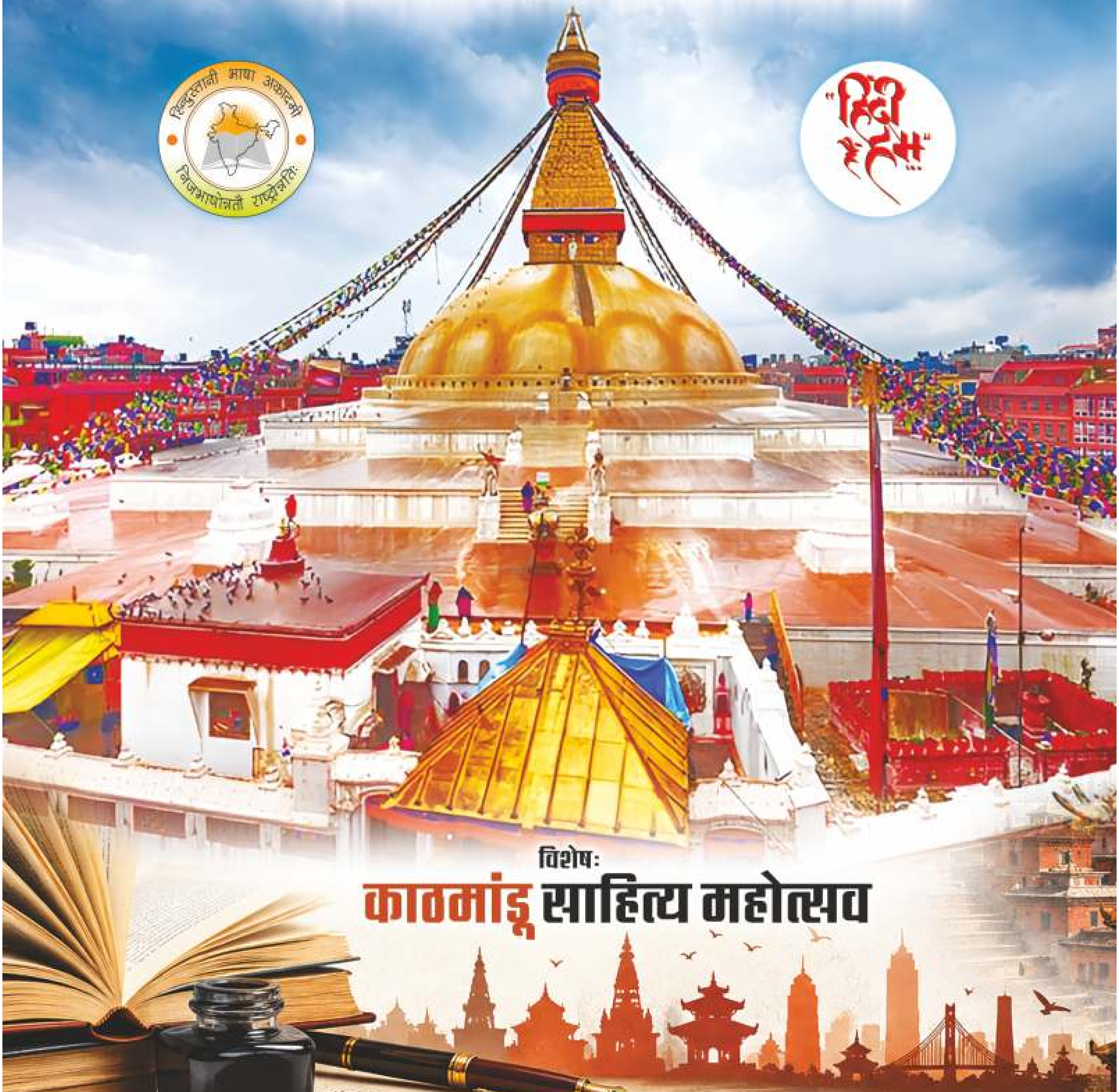

विशेषः

काठमांडू साहित्य महोत्सव

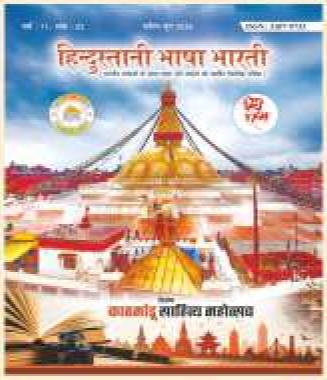

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

(त्रैमासिक पत्रिका) के प्रकाशित अंक

क्षेत्रीय भाषा, साहित्य, संस्कृति और लोक कलाओं पर केंद्रित विशेषांक

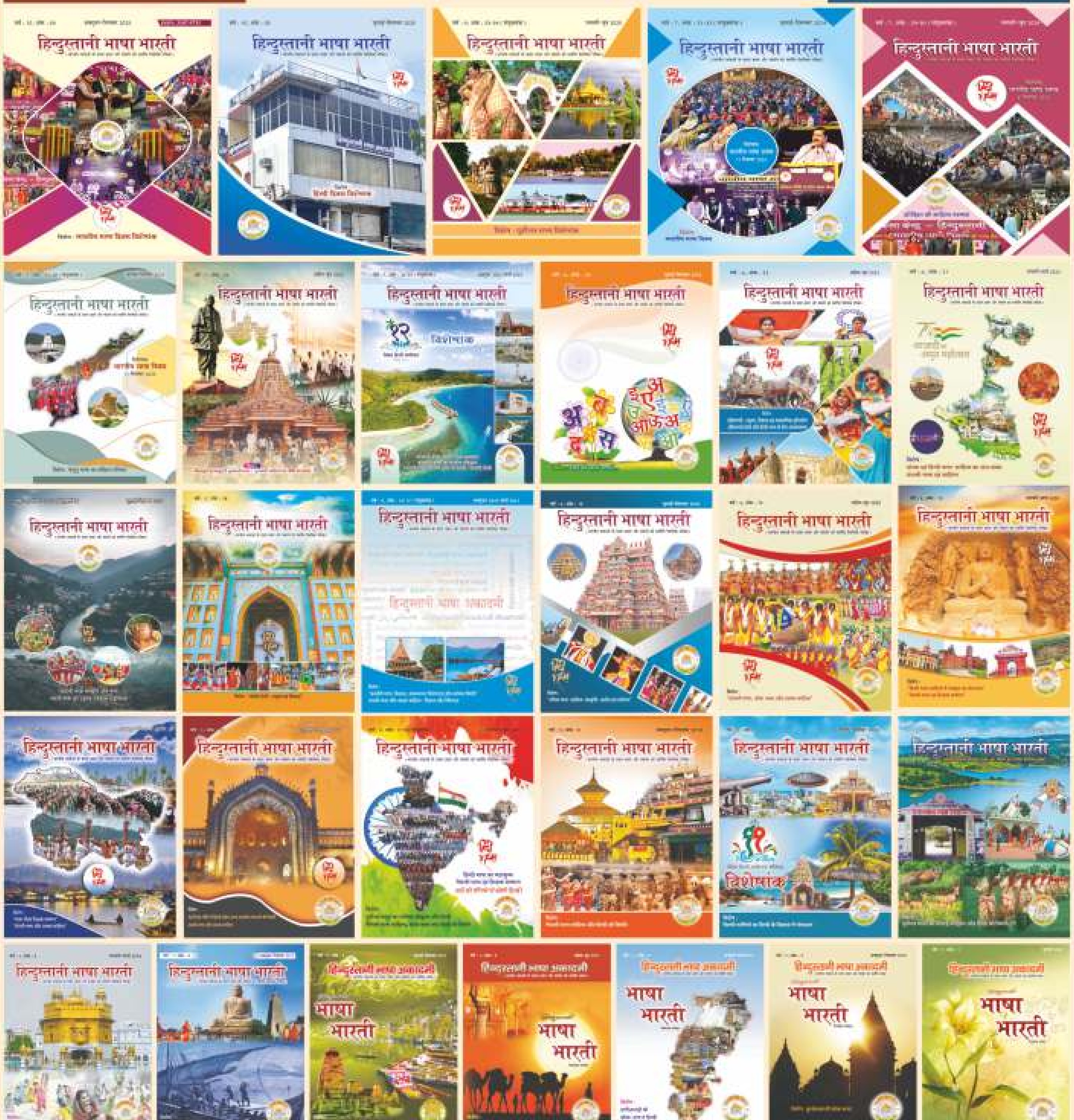

वर्ष : 11, अंक : 02 अप्रैल-जून 2026

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

मूल्य : 30 रुपये

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक मंडल

सम्पादक : सुधाकर बाबू पाठक
E-mail: sudhakarpathak51@gmail.com

प्रबन्ध सम्पादक : विजय कुमार शर्मा
E-mail: vk1949sharma@gmail.com

संयुक्त सम्पादक : राजकुमार श्रेष्ठ
E-mail: rajjiwanbooks@gmail.com

सह सम्पादक : विनोद कुमार शर्मा
E-mail: vinodparashar1961@gmail.com

उप सम्पादक : संदीप कुमार
E-mail: kumarsandeep05169@gmail.com

: सुषमा भण्डारी
E-mail: koplein@gmail.com

: बिनीत कुमार
E-mail: vineetpandeykavi@gmail.com

: डॉ. वनीता शर्मा
E-mail: vanita62happy@gmail.com

सम्पादकीय सलाहकार : सुरेखा शर्मा
: सरोज शर्मा
: डॉ. सोनिया अरोड़ा
: ध्रुव शिवहरे
: गरिमा संजय

प्रकाशक :
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी ट्रस्ट
म.नं. 3675, राजा पार्क, शकूरबस्ती, दिल्ली-110034
ई-मेल : info@hindustanibhashaakadami.com
hindustanibhashabharati@gmail.com
वेबसाइट : www.hindustanibhashaakadami.com
सम्पर्क सूत्र : 09873556781, 09968097816

प्रारंभिक वर्ष: 2016 ● भाषा: हिन्दी
भारतीय भाषाओं, बोलियों और उनके साहित्य-संस्कृति की अव्यवसायिक त्रैमासिक पत्रिका

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में लेखकों के अपने विचार हैं। प्रकाशक का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का निपटारा दिल्ली/नई दिल्ली की सीमा में आने वाली सक्षम अदालतों और फोरमों में ही किया जाएगा। सम्पादन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक और अव्यावसायिक है।

प्रकाशक, सम्पादक व मुद्रक सुधाकर बाबू पाठक द्वारा स्वामी हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी ट्रस्ट, 3675, राजा पार्क, शकूर बस्ती, दिल्ली-110034 के लिए प्रकाशित और सन्नी प्रिन्टर्स, बी-234, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित।

विषय सूची

सम्पादकीय :
भारत और नेपाल के साहित्यिक-सांस्कृतिक संबंध 04

रिपोर्ट :
'काठमांडू साहित्य उत्सव' का भव्य आयोजन सम्पन्न -राजकुमार श्रेष्ठ 06
काठमांडू के प्रतिष्ठित आई.ए.सी.ई.आर. कॉलेज में 'वसंत काव्य उत्सव' का आयोजन -विनोद पाराशर 09
भारतीय राजदूतावास, काठमांडू में काव्यगोष्ठी -राजकुमार श्रेष्ठ 10

मेरी नेपाल यात्रा : मित्रता, संस्कृति और स्मृतियों का संगम -किशोर श्रीवास्तव 11
अनुभूति में उतरता काठमांडू-साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा-वृत्तांत -डॉ. भावना तिवारी 12
भाषा-सेतु का उत्सव : काठमांडू की अविस्मरणीय यात्रा -शकुंतला मित्तल 15
भाषा का वैश्वीकरण और अनुवाद -डॉ. संध्या द्विवेदी 16
हिन्दी के विकास में वाराणसी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि -डॉ. श्याम किशोर पाण्डेय 21
घरों से छूट रहा है मातृभाषाओं का संस्कार -डॉ. गौरव कुमार 22

युवा मत :
लोकगीतों में अपने समय का स्वर -ध्रुव शिवहरे 25
संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी: ऐतिहासिक यात्रा और वर्तमान स्थिति -आकांक्षा मिश्रा 27

लोक से नागर तक : हिन्दी साहित्य की निर्मिति में लोकसाहित्य की भूमिका -डॉ. अलका आनंद 29
नेपाल यात्राः साहित्य, कला, संस्कृति और श्रद्धा का संगम -डॉ. वनिता शर्मा 31
नेपाल की साहित्यिक यात्रा -प्रकाश कँवर 32
भारतीय ज्ञान प्रणाली के संदर्भ में भारतीय भाषाएँ -आनंद दास 34
शिक्षण का माध्यम : मातृभाषाएँ -डॉ. मीनाक्षी जोशी 39
कृत्रिम मेधा और भारत की भाषाई संप्रभुता के विविध आयाम -डॉ. शैलेश शुक्ला 41

रिपोर्ट :
परिचर्चा-अपने संविधान को जानें -विजय कुमार शर्मा 43
डिजिटल मीडिया : चुनौतियाँ, प्रभाव और सामाजिक उत्तरदायित्व विषय पर संगोष्ठी का आयोजन संपन्न -सरोज शर्मा 45
लक्ष्मीबाई कॉलेज में 'अपने संविधान को जानें' परिचर्चा -गरिमा संजय 47
विश्व पर्यावरण दिवस पर 'प्रकृतिः ए पोएटिक मंथन' काव्य गोष्ठी एवं लघु नाट्य प्रस्तुति -सुषमा भण्डारी 49

सम्पादकीय

भारत और नेपाल के साहित्यिक-सांस्कृतिक संबंध

सुधाकर पाठक
सम्पादक एवं अध्यक्ष,
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

साहित्य मनुष्य को संवेदनशील बनाता है । साहित्य से जुड़ा व्यक्ति अपने समाज के यथार्थ को अधिक संवेदनशीलता से समझने और अनुभव करने का प्रयास करता है । अपनी भाषा और सांस्कृतिक मूल्यों की जीवंतता भी साहित्य में प्रतिबिंबित होती है । प्रत्येक भाषा का अपना एक समुदाय है, जो उस भाषा को जीता है । उस समुदाय से उसकी भाषा को अलग कर दें, तो उस समुदाय की पहचान ही समाप्त हो जाती है, इसलिए भाषा किसी समुदाय के लिए केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं होती, बल्कि उसके समग्र अस्तित्व का आधार भी होती है । पहचान के संकट के इस दौर में किसी समुदाय के पास अपनी भाषा, कला, संगीत, साहित्य और संस्कृति का होना और उसका पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरण भी होना, सबसे बड़ी उपलब्धि है । यह मौलिकता ही उसे अन्य समुदायों से भिन्न करती है । यही हमारी वास्तविक पहचान है । इस पहचान को अक्षुण्ण बनाए रखने में साहित्य की भूमिका अतुलनीय है ।

आज, जब वैश्वीकरण, तकनीकी परिवर्तन और बाजारवाद के प्रभाव से भाषाई एवं सांस्कृतिक पहचान अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है, ऐसे समय में साहित्य की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है । साहित्य समाज का दर्पण होता है । एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए समाज को अपने इस दर्पण में झाँकते रहना आवश्यक है । दर्पण पर चाहे धूल की परतें जमी हों, किंतु उसमें वास्तविकता को प्रतिबिंबित करने की शक्ति कभी क्षीण नहीं होती । यही कारण है कि साहित्य कालजयी होता है । साहित्य किसी एक भाषा, समुदाय, देश या भूगोल तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह विभिन्न भाषाओं, समुदायों, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों और परिवेशों को भी जोड़ता है । इसलिए साहित्य, एक भाषाई माध्यम होने के बावजूद, वास्तव में अनुभूतियों का संगम और मानवीय विचारों का सशक्त सेतु है ।

साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में भारत और नेपाल का संबंध अत्यंत प्राचीन, आत्मीय और बहुआयामी रहा है । दोनों देशों की सांस्कृतिक विरासत, धार्मिक परंपराएँ और लोकजीवन अनेक स्तरों पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं । समय-समय पर साहित्यकारों और सांस्कृतिक संस्थाओं ने इन संबंधों को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए विविध प्रयास किए हैं । इसी दिशा में अनुवाद ने दोनों देशों के साहित्य को परस्पर निकट लाने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पहल की गई । भारत और नेपाल के साहित्यिक-सांस्कृतिक संबंधों को प्रगाढ़ करने के उद्देश्य से हमने नेपाल की साहित्यिक संस्था 'एपेक' के साथ मिलकर एक सार्थक सहकार्य किया । इस योजना के अंतर्गत 'अनुभूति' शीर्षक से एक साझा काव्य-संग्रह प्रकाशित किया गया, जिसमें भारत और नेपाल के 31-31 कवियों की कविताएँ उनके मूल रूप तथा अनुवाद सहित प्रकाशित की गई हैं । योजना के अनुसार इस पुस्तक का लोकार्पण दोनों देशों में किया जाना है । इसी क्रम में 8-9 अप्रैल, 2026 को 'काठमांडू साहित्य उत्सव' के अंतर्गत इसका भव्य लोकार्पण एवं साहित्यिक आयोजन संपन्न हुआ । अब दिल्ली में इस पुस्तक के 'लोकार्पण एवं सम्मान समारोह' का आयोजन किया जाना शेष है ।

काठमांडू में आयोजित द्विदेशीय काव्यगोष्ठी में एक अत्यंत सुंदर और अभिनव प्रयोग किया गया । इस गोष्ठी में नेपाली कवियों ने हिंदी में अनूदित अपनी कविताओं का तथा भारतीय कवियों ने नेपाली में अनूदित अपनी कविताओं का पाठ किया । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हिंदी और नेपाली दोनों भाषाओं की लिपि देवनागरी है, किंतु उनकी भाषिक संरचना, व्याकरण तथा उच्चारण में पर्याप्त भिन्नता है । स्वाभाविक रूप से, जब कवियों ने एक-दूसरे की भाषा में अपनी कविताओं का पाठ किया, तो उच्चारणगत त्रुटियाँ भी सामने आईं । इन त्रुटियों ने जहाँ पूरे सभागार को हँसी और उल्लास से भर दिया, वहीं दोनों देशों के साहित्यकारों के बीच आत्मीयता और भावनात्मक संबंधों को भी अधिक सुदृढ़ बनाया । वास्तव में इस प्रयोग का उद्देश्य यह अनुभव करना था कि यदि कोई हिंदीभाषी नेपाली भाषा में अथवा कोई नेपालीभाषी हिंदी भाषा में काव्यपाठ करे, तो वह कैसा सुनाई देता है और उसकी अनुभूति कैसी होती है । निस्संदेह, एक-दूसरे की भाषा, संस्कृति और कला का सम्मान व्यक्त करने का यह अभिनव प्रयास अत्यंत सार्थक और स्मरणीय सिद्ध हुआ ।

यद्यपि नेपाल में हिन्दी साहित्य व्यापक रूप से पढ़ा जाता है और वहाँ के अधिकांश लोग हिन्दी को सहजता से समझते तथा बोलते भी हैं, फिर भी किसी दूसरी भाषा में कविता का पाठ करना अपने आप में एक अलग अनुभव होता है । भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि किसी समाज की संस्कृति, संवेदना और जीवन-दृष्टि की वाहक भी होती है । इसलिए जब कोई व्यक्ति दूसरी भाषा में किसी साहित्यिक रचना का पाठ करता है, तो वह केवल शब्दों का उच्चारण नहीं करता, बल्कि उस भाषा और उसकी सांस्कृतिक परंपरा के प्रति अपना सम्मान भी व्यक्त करता है ।

वास्तव में साहित्य मनुष्यों को भाषाई सीमाओं से ऊपर उठाकर वैचारिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक स्तर पर जोड़ने का कार्य करता है । साहित्य के माध्यम से लोग एक-दूसरे के समाज, जीवन-मूल्यों, रीति-रिवाजों, सुख-दुःख, संघर्षों और आकांक्षाओं को निकटता से समझते हैं । वे दूसरे समाज की मिट्टी की सोंधी गंध, वहाँ के लोकजीवन की सहजता और मानवीय संवेदनाओं को इस प्रकार आत्मसात कर लेते हैं कि उन्हें महसूस होने लगता है कि हमारे बीच यदि कोई दूरी है, तो वह केवल भौगोलिक है । मानवीय दृष्टि से हम सब एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं । हमारी संवेदनाएँ समान हैं, हमारी कथा-व्यथा एक-सी है, हमारे संघर्ष, हमारी सफलताएँ और हमारी असफलताएँ भी एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं । यही साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति है कि वह विविधताओं के बीच भी आत्मीयता, विश्वास और मानवीय एकता का सेतु निर्मित करता है ।

साहित्य के प्रचार-प्रसार और उसके वैश्विक विस्तार में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अनुवाद की होती है । अनुवाद केवल शब्दों का रूपांतरण नहीं, बल्कि विचारों, संवेदनाओं, संस्कृति और जीवन-दृष्टि का एक भाषा से दूसरी भाषा में सृजनात्मक संप्रेषण है । यह ऐसा सशक्त सेतु है, जो दो भिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और समाजों के बीच संवाद स्थापित कर उन्हें एक-दूसरे के निकट लाने का कार्य करता है । अनुवाद के माध्यम से किसी देश या समाज का श्रेष्ठ साहित्य अपनी भाषाई सीमाओं से बाहर निकलकर व्यापक पाठक-समुदाय तक पहुँचता है और नई सांस्कृतिक चेतना का निर्माण करता है ।

इस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया में अनुवादक की भूमिका अत्यंत विशिष्ट और अनिवार्य होती है । वह केवल भाषा का जानकार नहीं होता, बल्कि दोनों भाषाओं और संस्कृतियों का संवेदनशील व्याख्याकार भी होता है । वह मूल रचना की आत्मा, भाव, शैली और सांस्कृतिक संदर्भों को यथासंभव सुरक्षित रखते हुए उन्हें दूसरी भाषा के पाठकों तक पहुँचाता है । वास्तव में अनुवादक ही दो भिन्न समाजों को एक-दूसरे के साहित्य, संस्कृति, कला, परंपराओं और जीवन-मूल्यों से परिचित कराता है । यही कारण है कि अनुवाद के माध्यम से न केवल साहित्य का दायरा विस्तृत होता है, बल्कि विभिन्न देशों और समाजों के बीच पारस्परिक समझ, आत्मीयता और सांस्कृतिक सौहार्द भी सुदृढ़ होता है ।

साहित्य का सबसे बड़ा दायित्व मनुष्य को मनुष्य से जोड़ना है । जब भाषाएँ एक-दूसरे से संवाद करती हैं, तो केवल शब्दों का आदान-प्रदान नहीं होता, बल्कि अनुभव, संवेदनाएँ, स्मृतियाँ और जीवन-दृष्टियाँ भी परस्पर साझा होती हैं । यही संवाद विभिन्न संस्कृतियों के बीच विश्वास, सम्मान और आत्मीयता का वातावरण निर्मित करता है । किसी भी समाज की समृद्धि केवल उसकी आर्थिक या वैज्ञानिक उपलब्धियों से नहीं आँकी जा सकती, बल्कि इस बात से भी निर्धारित होती है कि वह अन्य भाषाओं और संस्कृतियों के प्रति कितना उदार, जिज्ञासु और ग्रहणशील है । साहित्य इस उदारता को विकसित करता है और मनुष्य को यह सिखाता है कि विविधता विरोध का नहीं, बल्कि समृद्धि का आधार है । जब विभिन्न देशों के साहित्यकार एक-दूसरे की रचनाओं को पढ़ते, अनुवादित करते और साझा करते हैं, तब वे केवल साहित्य का विस्तार नहीं करते, बल्कि मानवीय सभ्यता के साझा सांस्कृतिक भविष्य को भी अधिक सुदृढ़ बनाते हैं ।

भाषा, संस्कृति, कला और साहित्य का परस्पर आदान-प्रदान दो देशों के बीच केवल सांस्कृतिक संवाद को ही सुदृढ़ नहीं करता, बल्कि उनकी सामाजिक, साहित्यिक और वैचारिक समृद्धि को भी नई दिशा प्रदान करता है । भारत और नेपाल दो ऐसे पड़ोसी देश हैं, जिनके संबंध केवल भौगोलिक निकटता तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उनका आधार साझा इतिहास, सांस्कृतिक विरासत, धार्मिक आस्थाओं और लोकजीवन की समान परंपराओं में निहित है । यद्यपि दोनों देशों की अपनी-अपनी स्वतंत्र राष्ट्रीय पहचान, भाषाई विविधता और सांस्कृतिक विशिष्टता है, फिर भी उनके बीच आत्मीयता और पारस्परिक विश्वास का संबंध सदियों पुराना है ।

वर्तमान समय में शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मीडिया, खेल, कला और संचार के क्षेत्र में नेपाल निरंतर प्रगति कर रहा है तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और सामरिक पहचान स्थापित कर रहा है । ऐसे समय में भारत और नेपाल के बीच साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सहयोग और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है । विशेष रूप से अनुवाद-साहित्य दोनों देशों के रचनाकारों, पाठकों और आम नागरिकों के बीच संवाद का एक सशक्त माध्यम बन सकता है । इसके माध्यम से एक-दूसरे की भाषा, संस्कृति, परंपराओं, जीवन-मूल्यों और साहित्यिक चेतना को समझने का अवसर मिलता है, जिससे पारस्परिक सम्मान, आत्मीयता और भ्रातृत्व की भावना और अधिक प्रगाढ़ होती है ।

हमारी कामना है कि भारत और नेपाल के बीच यह आत्मीय साहित्यिक-सांस्कृतिक संबंध भविष्य में और अधिक सुदृढ़ हों तथा दोनों देशों के युवा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को आत्मसात करते हुए ज्ञान, संस्कृति और मानवीय मूल्यों के आधार पर एक समृद्ध, शांतिपूर्ण और सहयोगपूर्ण भविष्य के निर्माण में अपनी सक्रिय भूमिका निभाएँ । इतिश्री...

-सुधाकर पाठक
अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

रिपोर्ट

‘काठमांडू साहित्य उत्सव’ का भव्य आयोजन सम्पन्न

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एवं एपेक नेपाल के संयुक्त तत्त्वावधान में 8-9 अप्रैल, 2026 को ‘काठमांडू साहित्य उत्सव’ का भव्य आयोजन सम्पन्न हुआ । आयोजन के पहले दिन नेपाली भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति के उन्नयन में अपने स्थापना काल से उद्देश्यपरक कार्य करने वाली नेपाल की प्रतिष्ठित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था एपेक नेपाल द्वारा अपने 27 वर्षों की सक्रिय एवं सफल यात्रा के अवसर पर ‘एपेक 27 वाँ वार्षिकोत्सव : सम्मान अर्पण एवं पुस्तक लोकार्पण समारोह’ का आयोजन किया गया । नेपाल पर्यटन बोर्ड, भृकुटीमण्डप के भव्य सभागार में पार्श्व में बज रहे मधुर नेपाली लोकधुनों से समूचा वातावरण गुंजायमान था । भारत से पधारे साहित्यकारों, भारतीय दूतावास, काठमांडू के अधिकारियों तथा बड़ी संख्या में नेपाली साहित्यकारों, पत्रकारों, कलाप्रेमियों, भाषाप्रेमियों, रंगकर्मियों, संचारकर्मियों एवं समाजसेवियों की उपस्थिति से सभागार मैत्रीभाव, सौहार्दपूर्ण और शोभायमान बना।

कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में नेपाल के ख्यातिप्राप्त नाटककार प्रो. (डॉ.) अभि सुवेदी उपस्थित थे । अध्यक्षता एपेक नेपाल के अध्यक्ष, विश्विमोहन श्रेष्ठ ने की । अन्य विशिष्ट अतिथियों में वरिष्ठ साहित्यकार श्री मेघराज नेपाल ‘मंजुल’, कवयित्री एवं मुक्तक सम्राज्ञी उषा शेरचन, उदीयमान युवा कथाकार हिमा रोक्का ‘प्रतिज्ञा’, नेपाल स्रष्टा समाज के अध्यक्ष श्रीओम श्रेष्ठ, अनुवादक एवं कवयित्री रश्मि शर्मा, एपेक नेपाल के कार्यकारी निदेशक, राजेन्द्र शलभ तथा हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष, श्री सुधाकर पाठक मंचासीन थे । मंचासीन अतिथियों के सम्मान, दीप प्रज्ज्वलन और सामूहिक नेपाली राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम का विधिवत रूप से शुभारम्भ किया गया ।

कार्यक्रम में सर्वप्रथम एपेक नेपाल द्वारा प्रतिष्ठित ‘विश्वज्योति काव्य सम्मान’ और ‘विश्वज्योति पांडुलिपि पुरस्कार’ प्रदान किए गए तथा पुस्तक लोकार्पण समारोह आयोजित हुआ । मंचासीन अतिथियों ने नेपाल के वरिष्ठ साहित्यकार मेघराज नेपाल ‘मंजुल’ को नेपाली साहित्य के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए ‘विश्वज्योति काव्य सम्मान’ से सम्मानित किया । इसी प्रकार ‘विश्वज्योति पांडुलिपि पुरस्कार’ से उदीयमान युवा कथाकार हिमा रोक्का ‘प्रतिज्ञा’ को नवाजा गया । सम्मानस्वरूप दोनों साहित्यकारों को दूब की माला, स्मृति चिह्न और नगद सम्मान राशि भेंट की गई । अनुवादक रश्मि शर्मा को अनुभूति पुस्तक के अनुवाद के लिए अनुवाद सेतु सम्मान से सम्मानित किया गया । इसके साथ ही एपेक नेपाल की पांडुलिपि पुरस्कार योजना के अंतर्गत चयनित और शांग्रीला बुक्स, काठमांडू से प्रकाशित पुस्तक ‘प्रतिज्ञा’ का विमोचन किया गया । हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की पहल पर केबीएस प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित, भारत और नेपाल के 31-31 कवियों की साझा कविता संग्रह ‘अनुभूति : हिन्दी-नेपाली काव्यपुंज’ का भी लोकार्पण किया गया ।

राजकुमार श्रेष्ठ

अपने स्वागत वक्तव्य में एपेक नेपाल के कार्यकारी निदेशक, राजेन्द्र शलभ ने संस्था के कार्यों, गतिविधियों और उपलब्धियों पर विस्तार से प्रकाश डाला । उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष, सुधाकर पाठक जी के नेतृत्व में भारत के विभिन्न क्षेत्रों से पधारे साहित्यकारों तथा अकादमी के पदाधिकारियों का विशेष स्वागत करते हुए कहा कि नेपाली साहित्य को विश्व की अन्य भाषाओं में तथा अन्य भाषाओं के साहित्य को नेपाली भाषा में अनुवाद एवं प्रकाशन के माध्यम से प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से एपेक नेपाल ने ‘हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी’ के साथ मिलकर एक सार्थक सहकार्य किया है । कार्यक्रम की रूपरेखा और ‘अनुभूति’ पुस्तक प्रकाशन योजना पर बात करते हुए उन्होंने बताया कि इस संग्रह में नेपाल और भारत के 31-31 कवियों की 2/2 कविताओं को उनके मूलरूप और अनुवाद के साथ प्रकाशित किया गया है जिसका दोनों देशों में इसका विधिवत रूप से लोकार्पण किया जाएगा ।

एपेक नेपाल के अध्यक्ष, विश्विमोहन श्रेष्ठ ने संस्था की संरक्षिका दिवंगत ज्योति श्रेष्ठ को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए विश्वज्योति काव्य सम्मान से सम्मानित होने वाले वरिष्ठ साहित्यकार मंजुल जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अपना मंतव्य रखा। विश्वज्योति पांडुलिपि पुरस्कार पर बात करते हुए उन्होंने बताया कि पिछले वर्ष यह पुरस्कार काव्य विधा पर दिया गया था और इस वर्ष लघुकथा विधा पर प्रदान किया गया तथा अगले वर्ष गजल विधा पर दिया जाएगा । इस वर्ष लघुकथा विधा पर 41 पांडुलिपियाँ हमें प्राप्त हुई थीं, जिनमें हिमा रोक्का की पांडुलिपि ‘प्रतिज्ञा’ को सर्वश्रेष्ठ पांडुलिपि के रूप में चयनित किया गया ।

श्री श्रेष्ठ जी ने यह भी बताया कि पुस्तक प्रकाशन होने तक उन्हें यह जानकारी नहीं थी कि सुश्री हिमा रोक्का शारीरिक रूप से विकलांग हैं । वे नेपाल के सुदूर क्षेत्र सुर्खेत में रहती हैं और वर्तमान में अस्पताल में उपचाररत हैं, इसके बावजूद, इस सम्मान को ग्रहण करने के लिए अस्पताल से दो दिन का अवकाश लेकर अपनी दीदी के साथ लंबी यात्रा तय कर काठमांडू पहुँचीं । अध्यक्ष श्री ने उनके अटूट उत्साह और

बुलंद हौसले की सराहना की तथा निर्णायक मंडल का आभार व्यक्त किया। उन्होंने नेपाल और भारत की दोनों संस्थाओं को जोड़ने तथा अनुवाद और पुस्तक प्रकाशन में सेतु का कार्य करने के लिए भारतीय दूतावास, काठमांडू के अधिकारी डॉ. धनेश द्विवेदी जी का भी आभार व्यक्त किया। अनुभूति : हिन्दी-नेपाली काव्यपुंज पुस्तक प्रकाशित करने के लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक और इस पुस्तक को हिन्दी-नेपाली दोनों भाषाओं में अनुवाद करने के लिए अनुवादक एवं कवयित्री रश्मि शर्मा जी का आभार व्यक्त किया।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने सभागार में उपस्थित नेपाल-भारत के साहित्यकारों को संबोधित करते हुए कहा कि किसी भी संस्था को चलाने के लिए अथक परिश्रम और सकारात्मक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। कई संस्थाएँ बनती हैं, दो-चार साल चलती हैं और फिर एक दिन बंद हो जाती हैं। लेकिन 27 वर्षों तक निर्बाध रूप से इतनी सक्रियता के साथ इतने सारे वरिष्ठ साहित्यकारों को साथ जोड़कर संस्था को चलाना एक बहुत बड़ा काम होता है, जिसे आप लोग बखूबी कर रहे हैं। आप लोग सचमुच बधाई के पात्र हैं। इसके साथ ही उन्होंने विश्वज्योति पांडुलिपि पुरस्कार से पुरस्कृत हिमा रोक्का 'प्रतिज्ञा' को बधाई दी और उनकी लघुकथा संग्रह पुस्तक 'प्रतिज्ञा' पर अपनी बात रखते हुए कहा कि मुझे नेपाली भाषा समझ में तो नहीं आती, लेकिन इतनी लंबी चयन प्रक्रिया के बाद यह पुस्तक चयनित और प्रकाशित हुई है, तो निश्चित रूप से इसमें बेहतरीन लघुकथाएँ सम्मिलित होंगी। हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की ओर से प्रस्ताव आगे बढ़ाते हुए उन्होंने मंच से घोषणा की कि यदि एपेक नेपाल की अनुमति हो, तो हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी इस पुस्तक का हिन्दी भाषा में अनुवाद कर प्रकाशित करेगी और भारत में इसका भव्य लोकार्पण भी किया जाएगा।

अनुभूति पुस्तक की परिकल्पना और योजना पर उन्होंने विस्तार से चर्चा की और इस पूरी प्रक्रिया पर शुरुआती दिनों से जुड़े भारतीय दूतावास, काठमांडू में सेवारत भारत सरकार के अधिकारी डॉ. धनेश द्विवेदी जी का आभार व्यक्त किया। दिल्ली में भी इस पुस्तक के शीघ्र ही लोकार्पण और सम्मान समारोह को भव्य रूप से आयोजित किए जाने की बात करते हुए उन्होंने पुस्तक में सम्मिलित रचनाकारों को भारत आने के लिए आमंत्रित किया। 'अनुभूति' पुस्तक की अनुवादिका रश्मि शर्मा का आभार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि अनुवाद का कार्य बहुत ही जटिल और गंभीर होता है। आदरणीया रश्मि शर्मा जी ने अकेले इस पूरी पुस्तक का हिन्दी और नेपाली दोनों भाषाओं में अनुवाद करके बहुत बड़ा काम किया है।

इसी तरह अन्य मंचासीन अतिथियों ने भी अपने सारगर्भित एवं विचारोत्तेजक उद्बोधनों से सभागार में उपस्थित श्रोताओं को लाभान्वित किया। कार्यक्रम का सुंदर एवं कुशल संचालन कवयित्री, पत्रकार एवं संचारकर्मी सुश्री लीला अनमोल ने किया। अपनी मधुर वाणी, सहज शैली एवं तीव्र बौद्धिकता के साथ उन्होंने पूरे कार्यक्रम को सुव्यवस्थित, जीवंत और यादगार बना दिया।

काठमांडू साहित्य उत्सव के दूसरे दिन, 9 अप्रैल 2026 को येल्लो पेगोड़ा होटल के सभागार में द्वि-देशीय काव्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक, एपेक नेपाल के अध्यक्ष श्री विश्वमोहन श्रेष्ठ, कवि श्री राजेन्द्र शलभ तथा अनुवादक श्रीमती रश्मि शर्मा मंचासीन थीं। काव्यगोष्ठी का शुभारंभ हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' पत्रिका के अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस विशेषांक के लोकार्पण के साथ हुआ।

काव्यगोष्ठी में 'अनुभूति' पुस्तक में सम्मिलित नेपाल और भारत के 31-31 कवियों ने काव्यपाठ किया। इस काव्यगोष्ठी में दोनों देशों की भाषा, संस्कृति और कला को सम्मान देने के लिए एक सुंदर और सार्थक प्रयोग किया गया। हिन्दीभाषी कवियों द्वारा उनकी नेपाली भाषा में अनूदित कविताओं का काव्यपाठ और नेपालीभाषी कवियों द्वारा उनकी हिन्दी भाषा में अनूदित कविताओं का काव्यपाठ किया गया। उच्चारण-दोष, अभिव्यक्ति और प्रस्तुतीकरण में कुछ सीमाएँ होने के बावजूद भाषाई सीमाओं से ऊपर उठकर आयोजित काव्यगोष्ठी रोमांचक और सफल रही।

काव्यगोष्ठी में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में डॉ. धनेश द्विवेदी, विनोद पाराशर, विजय शर्मा, राजकुमार श्रेष्ठ, गरिमा संजय, डॉ. वनिता शर्मा, प्रकाश कंवर, किशोर श्रीवास्तव, सत्य कुमार 'प्रेमी', डॉ. भावना तिवारी, डॉ. शकुंतला मित्तल, डॉ. तुलिका सेठ, डॉ. कविता मल्होत्रा, नमिता राकेश, मोनालिसा पंवार ने काव्यपाठ किया। इसी तरह नेपाली कवियों में स्नेह सायमी, दीप दर्पण, भूपिन खड्का, गीता कार्की, मणि लोहनी, निमेश निखिल, अशेष मल्ल, मोमिला, चन्द्र गुरुंग, उषा शेरचन, ज्योति जंगल, छविरमण सिलवाल, प्रज्ज्वल अधिकारी, भोजराज न्यौपाने, विमल वैद्य, विश्विमोहन श्रेष्ठ, राजेन्द्र शलभ, रश्मि शर्मा, उमा सुवेदी, लीला अनमोल आदि ने काव्यपाठ किया।

शुभकामना संदेश देते हुए हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने कहा कि हम नेपाल से एक मीठी अनुभूति लेकर जा रहे हैं और यहाँ से हमें बहुत कुछ सीखने को मिला है। कविता अपने आप में एक पूर्ण संवाद होती है, और मंच से अत्यंत गहरी एवं संवेदनशील कविताओं का पाठ हुआ। उन्होंने आगे कहा कि आज जिस प्रकार भाषाई बंधनों को तोड़कर एक सौहार्दपूर्ण साहित्यिक आयोजन संपन्न हुआ है, यह एक बड़ी उपलब्धि है। यह अभी एक अल्पविराम मात्र है; आगे एपेक नेपाल के साथ मिलकर हम अन्य योजनाओं पर भी कार्य करेंगे। इसी क्रम में शीघ्र ही दिल्ली में भी एक भव्य आयोजन किया जाएगा, जिसमें भाषा और साहित्य के साथ-साथ सांस्कृतिक कार्यक्रमों को भी सम्मिलित किया जाएगा। उन्होंने एपेक नेपाल के अध्यक्ष श्री विश्विमोहन जी, संयोजक श्री राजेन्द्र शलभ, अनुवादक श्रीमती रश्मि शर्मा सहित एपेक नेपाल के सभी पदाधिकारियों एवं सभागार में उपस्थित नेपाली साहित्यकारों का आभार व्यक्त किया।

काव्यगोष्ठी के समापन पर भारत से पधारे साहित्यकारों को सम्मान-पत्र एवं रुद्राक्ष की माला भेंट कर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का संचालन प्रखर कवयित्री एवं संचारकर्मी सुश्री लीला अनमोल ने किया। रात्रिभोज के उपरांत कार्यक्रम का समापन हुआ।

'काठमांडू साहित्य उत्सव' का भव्य आयोजन के कुछ चित्र

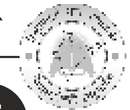

रिपोर्ट

काठमांडू के प्रतिष्ठित आई.ए.सी.ई.आर. कॉलेज में 'वसंत काव्य उत्सव' का आयोजन

10 अप्रैल, 2026 को काठमांडू के प्रतिष्ठित आई.ए.सी.ई. आर. कॉलेज में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के साहित्यिक प्रतिनिधिमंडल के सम्मान में पेन नेपाल (PEN Nepal) चैप्टर द्वारा 'वसंत काव्य उत्सव' का भव्य आयोजन किया गया । सभा-कक्ष में मंचासीन अतिथियों के रूप में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक, नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान की पूर्व सदस्य श्रीमती लक्ष्मी माली तथा आस्ट्रेलियन कवि एवं पेन नेपाल के अध्यक्ष श्री भीष्म उप्रेती की गरिमामयी उपस्थिति रही ।

एक सादगीपूर्ण, आत्मीय और साहित्यिक वातावरण में उपस्थित भारतीय एवं नेपाली साहित्यकारों, कवियों तथा साहित्य-प्रेमियों ने वसंत के आगमन पर अपनी अनुभूतियों को काव्य रूप में व्यक्त किया । कार्यक्रम को संबोधित करते हुए हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष सुधाकर पाठक जी ने दोनों देशों के बीच साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की महत्ता पर प्रकाश डाला । उन्होंने वर्तमान समय में चल रहे वैश्विक युद्ध और उससे उत्पन्न समस्यों को केन्द्रित करते हुए समाज में साहित्य की भूमिका और मनुष्य की संवेदनशीलता पर अपने विचार व्यक्त किए । काठमांडू प्रवास के दौरान पेन नेपाल द्वारा अकादमी के प्रतिनिधिमंडल को आमंत्रित कर वसंत काव्य उत्सव में सम्मानित करने के लिए उन्होंने पेन नेपाल चौप्टर और भीष्म उप्रेती जी का हार्दिक आभार व्यक्त किया ।

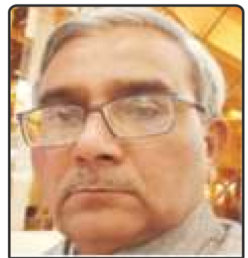

विनोद पाराशर

भीष्म उप्रेती जी ने कहा कि हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के साथ मिलकर भविष्य में और भी वृहत तथा प्रभावशाली आयोजन करने की दिशा में कार्य किया जाएगा । उन्होंने कार्यक्रम में पधारे सभी अतिथियों, साहित्यकारों और श्रोताओं का धन्यवाद ज्ञापन किया । इस अवसर पर हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की ओर से भीष्म उप्रेती जी को सम्मानित किया गया । कार्यक्रम की सफलता में पेन नेपाल चौप्टर की पूरी टीम, आई.ए.सी.ई.आर. कॉलेज प्रबंधन तथा स्थानीय साहित्यिक संगठनों का विशेष योगदान रहा । यह आयोजन न केवल वसंत ऋतु का स्वागत था, बल्कि भारत और नेपाल के बीच साहित्यिक मित्रता को और गहरा बनाने वाला एक सुंदर माध्यम भी साबित हुआ ।

रिपोर्ट

भारतीय राजदूतावास, काठमांडू में काव्यगोष्ठी का आयोजन

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एवं एपेक नेपाल के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित काठमांडू साहित्य उत्सव के समापन के बाद हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी का एक प्रतिनिधिमंडल 10 अप्रैल, 2026 को भारतीय राजदूतावास, काठमांडू स्थित डॉ. धनेश द्विवेदी जी के आधिकारिक निवास पर उनके निमंत्रण पर काव्यगोष्ठी एवं रात्रिभोज कार्यक्रम में सम्मिलित हुआ । अत्यंत आत्मीय, सौहार्दपूर्ण और साहित्यिक वातावरण में आयोजित इस कार्यक्रम में अकादमी के सदस्यों ने अपनी रचनाओं का पाठ किया। कविताओं की प्रस्तुति ने पूरे वातावरण को भाव-विभोर कर दिया।

कार्यक्रम के दौरान अकादमी के प्रतिनिधिमंडल को भारतीय राजदूतावास में कार्यरत अन्य भारतीय मित्रों से मिलने का भी अवसर मिला । इस भेंट में पारिवारिक आत्मीयता का माहौल था । हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने अपने उद्बोधन में डॉ. धनेश द्विवेदी जी के प्रति गहरा सम्मान व्यक्त करते हुए कहा कि डॉ. धनेश द्विवेदी जी अकादमी के स्थापना काल से ही जुड़े रहे हैं और अनेक कार्यक्रमों में मुख्य अतिथि की भूमिका का निर्वहन कर चुके हैं । गृह मंत्रालय, भारत सरकार के वरिष्ठ अधिकारी डॉ. द्विवेदी वर्तमान में काठमांडू स्थित भारतीय राजदूतावास में महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी संभाल रहे हैं । आपने इतने कम समय में अपने शालीन व्यवहार, सक्रियता, साहित्य के प्रति गहरी लगन और अत्यंत आत्मीयता से न केवल राजदूतावास के कार्यों को सुचारू रूप से संचालित किया है, बल्कि नेपाल के साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों का भी दिल जीत लिया है । काठमांडू साहित्य उत्सव के सफल आयोजन में भी आपकी सक्रिय और प्रेरणादायी भूमिका रही है । सुधाकर पाठक जी ने इस सुंदर और आत्मीय आयोजन के लिए डॉ. द्विवेदी जी का हार्दिक आभार व्यक्त किया ।

राजकुमार श्रेष्ठ

उल्लेखनीय है कि काठमांडू स्थित अन्य देशों के दूतावासों की तुलना में भारतीय राजदूतावास सबसे विशाल परिसर में फैला हुआ है, जहाँ पूर्ण सुरक्षा व्यवस्था के बीच एक स्वतंत्र और समृद्ध भारतीय दुनिया बसी हुई है । इस अवसर पर हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की ओर से डॉ. धनेश द्विवेदी जी को उनके साहित्य प्रेम, सांस्कृतिक आदान-प्रदान में योगदान और दोनों देशों के बीच मधुर संबंधों को प्रोत्साहित करने के लिए सम्मानित किया गया । रात्रिभोज के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ, जिसमें सभी उपस्थितजनों ने इस स्मरणीय संध्या की सराहना की ।

मेरी नेपाल यात्रा : मित्रता, संस्कृति और स्मृतियों का संगम

हाल ही में मुझे हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी, दिल्ली के लगभग बीस सदस्यों के साथ नेपाल की चार दिवसीय यात्रा पर जाने का अवसर मिला। दिल्ली से हवाई जहाज द्वारा काठमांडू पहुँचते ही ऐसा लगा मानो हम किसी नए, लेकिन अपने ही संसार में प्रवेश कर रहे हों, जहाँ हर चेहरा अपनापन लिये था।

यात्रा के पहले ही दिन हम काठमांडू के पेगोडा होटल में ठहरे। वहाँ नन्हीं-सी कर्मचारी अर्पिता राउत की मुस्कान और अपनत्व भरे स्वागत ने थकान को पलभर में दूर कर दिया। होटल में हमारे भोजन की विशेष देखभाल अन्य कर्मियों के साथ कु. अंजना ने की। बातचीत के दौरान जब हमें यह ज्ञात हुआ कि अर्पिता दिन में होटल के साथ-साथ एक डेंटल क्लिनिक में भी लगभग अठारह-अठारह घंटे काम करती हैं और अंजना अपने पिता के निधन के बाद परिवार का भार संभाल रही हैं- तो मन भीतर तक द्रवित हो उठा। इन छोटी-छोटी कहानियों ने इस यात्रा को केवल पर्यटन नहीं, बल्कि संवेदनाओं का अनुभव बना दिया।

अगले दिन हम श्रद्धा से भरे मन के साथ पशुपतिनाथ मंदिर के दर्शन करने पहुँचे। वहाँ की आध्यात्मिक ऊर्जा ने सभी को एक अद्भुत शांति का अनुभव कराया। इसके बाद हमने स्वयंभूनाथ स्तूप (मंकी टेम्पल) और अन्य दर्शनीय स्थलों का भ्रमण किया।

इस यात्रा का एक विशेष आकर्षण नेपाल-भारत मैत्री के अंतर्गत आयोजित दो कवि गोष्ठियाँ रहीं, जो एपेक, नेपाल के सहयोग से संपन्न हुईं। इन गोष्ठियों में भारतीय और नेपाली कवियों ने मिलकर शब्दों का ऐसा सेतु बनाया, जिसने दोनों देशों की संस्कृति को और करीब ला दिया। कविता, गीत और शायरी के इस उत्सव में हम सभी ने भरपूर आनंद लिया।

इस यात्रा का एक और सुखद पक्ष यह रहा कि कवि सम्मेलनों में जहाँ भारतीय कवियों ने नेपाली भाषा में अपनी कविताएँ प्रस्तुत कीं, वहीं नेपाली कवियों ने हिन्दी में अपनी रचनाएँ सुनाकर आपसी प्रेम और भाषाई एकता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया।

दूसरे दिन के काव्य सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात मैं अपने कुछ मित्रों के साथ अपने पुराने नेपाली परम मित्र श्री किरन स्था के घर गया। वहाँ उनकी पत्नी, समाजसेवी श्रीमती सरिता श्रेष्ठ और उनकी बेटी कृष्णा ने हमारा अत्यंत आत्मीय स्वागत किया। श्री किरन हमें पेगोडा होटल से अपनी कार में लेकर अपने घर गए और स्नेहपूर्ण आतिथ्य के बाद पुनः सुरक्षित होटल तक छोड़कर आए। यह आत्मीयता हमारे लिए इस यात्रा का एक अविस्मरणीय अध्याय बन गई।

यात्रा के दौरान हमें कई नए नेपाली मित्र भी मिले। इनमें कवयित्री और बेहतरीन एंकर लीला अनमोल तथा कवयित्री उमा सुवेदी विशेष रूप से उल्लेखनीय रहीं। स्थानीय भ्रमण के दौरान जब उन्होंने हिन्दी फिल्मी गीत "फूलों का तारों का", "हम तेरे शहर में आए हैं मुसाफिर की तरह" और "एक प्यार का नगमा है"- गुनगुनाए, तो ऐसा लगा मानो सीमाएँ कहीं विलीन हो गई हों। हमने भी जब एक नेपाली फिल्मी गीत का मुखड़ा गाकर सुनाया तो मेरे नेपाली मित्र भी झूम उठे।

किशोर श्रीवास्तव

उमा सुवेदी के मुख से गालिब का यह शेर "मुझे बस यही गिला है कि तू मुझे देर से मिला है" सुनते ही हम सभी ठहाकों के साथ उछल पड़े।

हमारी टीम का टाइटल गीत-

"इंसान का इंसान से हो भाईचारा, यही पैगाम हमारा"

पूरी यात्रा में जैसे हमारी पहचान बन गया था, जो बार-बार सबकी जुबान पर आ जाता।

दो दिन के इस मैत्रीपूर्ण और सांस्कृतिक प्रवास के बाद तीसरे दिन कुछ सदस्य दिल्ली लौट गए, जबकि शेष साथियों ने नेपाल में भारतीय दूतावास में अटैची पद पर कार्यरत अपने मित्र श्री धनेश गोस्वामी के घर आमंत्रण का आनंद लिया। वहाँ स्वादिष्ट भोजन के साथ स्नेह, आत्मीयता, गीत और कविता का जो संगम देखने को मिला, वह अविस्मरणीय रहा।

चौथे दिन हम पहुँचे लुम्बिनी, जहाँ भगवान बुद्ध की जन्मस्थली के दर्शन कर मन गहरे आध्यात्मिक भाव से भर उठा। वहाँ का शांत वातावरण, प्राचीन स्तूप और स्मारक मानो समय को थामे खड़े थे। वापसी में हमने गोरखपुर में गोरखनाथ मंदिर (बाबा गोरखधाम) के दर्शन किए और फिर ट्रेन से दिल्ली लौट आए।

पूरी यात्रा के दौरान हमारी टीम का नेतृत्व संस्था के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक जी ने बड़े ही स्नेह और कुशलता से किया। उनकी सतर्कता और मार्गदर्शन के कारण हमें कहीं भी कोई असुविधा नहीं हुई।

इस प्रकार, चुलबुले और आत्मीय मित्रों के साथ बिताए गए इन चार दिनों ने हमें केवल नए स्थानों से ही नहीं, बल्कि नए रिश्तों, नई भावनाओं और अनगिनत यादों ने भी समृद्ध कर दिया। यह यात्रा हमारे लिए श्रद्धा, मस्ती और मानवीय जुड़ाव का एक सुंदर संगम बन गई, एक ऐसी स्मृति, जो हमेशा मुस्कान बनकर साथ रहेगी।

निष्कर्षतः सीमाएँ नक्शों में होती हैं, दिलों में नहीं, हमने यह बात नेपाल की राहों में सीखी।

जहाँ शब्दों ने जोड़े रिश्तों के नए पुल, और हर मुस्कान ने एक नई कहानी लिखी । यात्राएँ सिर्फ स्थान नहीं बदलतीं, वे भीतर के इंसान को भी नया कर जाती हैं।

-किशोर श्रीवास्तव
पूर्व केंद्र सरकार प्रथम श्रेणी अधिकारी/संपादक/कलाकर्मी

अनुभूति में उतरता काठमांडू - साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा-वृत्तांत

भारत-नेपाल द्विदेशीय साहित्यिक-सांस्कृतिक संवाद हेतु 8 अप्रैल, 2026 को मुझे पहुँचना था अपने पड़ोसी मित्र देश नेपाल की राजधानी काठमांडू । इसी उद्देश्य हेतु 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक जी के निर्देशन और नेतृत्व में, मैं खड़ी हूँ अपने अन्य साथी सदस्यों के साथ, इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा, टर्मिनल-3 पर । आवश्यक उद्घोषणाओं और सुव्यवस्थित हलचल के मध्य, राघव चड्ढा द्वारा सिफारिश की गई 10 रुपये वाली चाय की अपूर्ण खोज को पीछे छोड़ते हुए, हम केवल एक देश की ओर नहीं, बल्कि एक साझा सांस्कृतिक भूगोल की ओर बढ़ने को उत्साहित थे ।

हसरत जयपुरी का लिखा, स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर का गाया गीत गुनगुना रही हूँ- "पंख होते तो उड़ आती रे" पर धन्यवाद ईश्वर का, अन्यथा मनुष्य की असीमित लालसाएँ आकाश पर भी अतिक्रमण कर लेतीं । अभी तो राइट ब्रदर्स का धन्यवाद करते हुए साधिकार एक-दो सेल्फी के पश्चात मोबाइल फ्लाइट मोड में । उड़ान भरते ही तमाम भागदौड़ शनैः-शनैः बादलों के नीचे छूटते ही बोध हुआ कि मनुष्य के समक्ष प्रकृति का विस्तार असीम है ।

कुछ समय पश्चात उड़ान समाप्त; धरती के साक्षात् देव को नमन करते हुए, त्रिभुवन अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा, काठमांडू पर हम एक नए देश की धड़कनों और उस अदृश्य आत्मीय चेतना को महसूस कर रहे थे, जो शब्दों से परे सांस्कृतिक सेतु निर्मित करती है। सीमाएँ मानचित्रों पर खींची जाती हैं, संस्कृतियाँ उन्हें सहज ही पार कर जाती हैं । संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश परंपराओं के माध्यम से जो साहित्यिक संवाद बना, वह आधुनिक काल में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी-नेपाली भाषाओं में स्थापित है । भारत और नेपाल के बीच कवि सम्मलेन, साहित्यिक गोष्ठियाँ, अनुवाद परियोजनाएँ और संयुक्त प्रकाशन लगातार होते रहे हैं । इसी कड़ी में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी और एपेक नेपाल के संयुक्त प्रयासों से हिन्दी कविताओं का नेपाली में और नेपाली कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किए जाने के प्रस्ताव के साथ ही इस यात्रा ने अपने बीज ग्रहण कर लिए थे, जिसकी परिणति द्विभाषिक काव्य-संकलन 'अनुभूति' के रूप में प्रत्यक्ष हुई; जिसमें हिन्दी और नेपाली के 31-31 रचनाकारों की कविताएँ नेपाल की डॉ. रश्मि शर्मा द्वारा परस्पर अनूदित की गई हैं । वस्तुतः संवेदनाएँ भाषा बदलने पर भी अपना अर्थ नहीं खोतीं, क्योंकि साहित्य किसी एक देश का नहीं, अपितु मनुष्य का होता है । तात्पर्य बस इतना कि यह यात्रा विमान से नहीं, अनुवाद से शुरू हुई । वैसे भी यात्राएँ केवल गंतव्य से नहीं, बल्कि प्रस्थान से शुरू होती हैं ।

विमानस्थल के प्रस्थान द्वार पर, नीलवर्णी अनंताकाश को अभिव्यक्त करती, अत्यंत प्रतीकात्मक देवदूत जैसी आकृतियों, पशु, प्राणियों, उग्रमुखी रक्षक देवताओं के मध्य असीम आभामंडल-युक्त पद्मासनस्थ बुद्ध की स्मितयुक्त भव्य प्रतिमा की बोधमयी मुस्कान जीवन को जीतने नहीं अपितु, समझने का संदेश देते हुए आगन्तुकों को आश्वस्त करती है कि परिवर्तन के बीच भी एक स्थिर शांति संभव है । जिसकी ओर पग स्वतः ही ठहर जाते हैं । बाहर आयोजक मंडल के सदस्य द्वारा आत्मीय धागों से बुने नेपाली अंगवस्त्र अर्पित कर भावभीनी स्वागत प्रक्रिया के पश्चात, बस में सवार होकर हम चल दिए 'होटल येलो पेगोडा' की ओर । यहीं से आरम्भ हुआ काठमांडू से हमारा प्रथम परिचय जो मल्लकालीन (12वीं-18वीं शताब्दी) नगर योजना का एक जीवंत उदहारण है; जहाँ धर्म, व्यापार, कला परस्पर एकीकृत हैं और आधुनिक जीवन शैली इतिहास से टकराए बिना अपनी गति स्वयं निर्धारित करती है । संभवतः इसी कारण यह नेपाल का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक केंद्र है ।

डॉ. भावना तिवारी

अपने नाम को सार्थक करता पीतवर्णी 'येलो पेगोडा होटल' के द्वार पर स्थापित मंगल-कलश भारतीय और नेपाली साझा संस्कृति की गहराई का परिचायक और दूसरी ओर पुष्पगुच्छ व शीतल पेय के साथ स्वागत 'अतिथि देवो भव' की परम्परा का जीवन्त परिचय था । अल्पविश्राम पश्चात झमाझम बारिश में हम प्रस्थान करते हैं एक साहित्यिक यज्ञारंभ हेतु नेपाल पर्यटन बोर्ड, भृकुटी मंडप की ओर; जो नेपाल की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का केंद्र है, जहाँ देश स्वयं को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करता है । भृकुटी देवी नेपाल की एक राजकुमारी मानी जाती हैं, जिनका संबंध तिब्बत के राजा सोंगत्सेन गाम्पो से जोड़ा जाता है । परंपरानुसार, उनके माध्यम से नेपाल और तिब्बत के बीच बौद्ध धर्म और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बल मिला । इसी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक स्मृति के कारण 'भृकुटी' नाम केवल एक स्थानसूचक नहीं, बल्कि प्राचीन सांस्कृतिक संबंधों का प्रतीक भी बन जाता है ।

एपेक नेपाल के 27वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर नेपाली कवयित्री लीला अनमोल के कुशल संचालन में अध्यक्ष विश्वमोहन श्रेष्ठ, कार्यकारी निदेशक राजेन्द्र शलभ और हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष सुधाकर पाठक जी के साथ अन्य भारतीय सदस्यों व अनेक गणमान्य नेपाली साहित्यकार बंधुओं की उपस्थिति में द्विभाषीय वृहद कविता-संकलन 'अनुभूति' का लोकार्पण उन संवेदनाओं का सार्वजनिक उद्भव था, जो अब तक केवल पांडुलिपियों में सिमटी थीं । इस ऐतिहासिक क्षण की गूँज चाय की

मेज तक साथ आयी जहाँ हम परस्पर परिचय-सत्र हेतु बैठे थे रात्रिभोज उपरांत सहयात्री राजकुमार श्रेष्ठ की अगुवाई में हम घुमक्कड़ी करते हुए काठमांडू की गलियों में 'चाइना मार्केट' की खोज में निकल पड़े; इधर-उधर भटकते, निराश और क्लांतमना अंततः वापस होटल पहुँच गए ।

अगले प्रातः (9 अप्रैल) को बस में सवार, हिन्दी चित्रपट के गीतों का आनंद लेते हुए यह अनुभूति और सघन हुई कि भूमि पर खींच लें कितनी ही रेखाएँ, तय कर लें आकाशीय मार्ग, निर्धारित कर बाँध दें जल की धाराएँ, किन्तु जिस प्रकार पंछी कोई सीमा स्वीकार नहीं करते; उसी भाँति कला और कलाकार को सीमाएँ सीमित नहीं कर सकतीं । उमा सुवेदी और लीला अनमोल के पथ-प्रदर्शन में हम बागमती नदी के तट पर स्थित यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल- 'यात्रा की आत्मा' अर्थात् पशुपतिनाथ मंदिर की ओर चल पड़े, जीवन और मृत्यु के बीच का मौन संवाद सुनने । जीवन और मृत्यु विरोध नहीं, एक ही सत्य के दो रूप हैं । एक ओर आरती होती है, तो दूसरी ओर अंत्येष्टि - यह द्वैत ही शिव का स्वरूप है । जहाँ शिव केवल देव नहीं, समय के साक्षी हैं । 'चतुर्मुखी शिवलिंग' चार दिशाओं में मुख, जो सृष्टि के चार आयामों (सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह) का प्रतिनिधित्व करते हैं । बोध यह भी कि मुक्ति केवल कामना से नहीं, साधना से मिलती है । जहाँ मुख्य द्वार पर, सबसे ऊपर भगवान शंकर की जटाओं से वेगपूर्वक प्रवाहित होती भागीरथी; बाईं ओर प्रथमपूज्य पार्वती-पुत्र गणपति, चन्द्र, सूर्य आदि की उकेरी गई आकृतियाँ और सूक्ष्म नक्काशी के साथ ही बाहर से ही दृष्टिगत होती नंदी की विशालकाय प्रतिमा ध्यान आकृष्ट करती हैं । प्रसाद तो प्रसाद है; नारियल, 'ॐ नमः शिवाय' से सजा हुआ वस्त्र, दीपक और पुष्प, किन्तु यहाँ रुद्राक्ष की माला अर्पित की जाती है । समूह मंदिर की ओर चल पड़ता है इन निर्देशों के साथ कि यदि दिशाभ्रम हो जाए, तो वहीं मिलें जहाँ से भीतर प्रवेश किया गया था । भला शिवत्व के साथ कोई भटक सकता है क्या ? प्रथमतः वह अंतस में जाग्रत तो हो । मंदिर परिसर में सजी रुद्राक्ष व नेपाली पोते से निर्मित कंठहार व अन्य सामग्री की खरीददारी हम भारतीयों के लिए उतनी ही आनंददायी रही, जितनी थकान भरी यात्रा में एक कप चाय।

इसी आनंद की अभिवृद्धि हेतु हम पहुँचे 'तिलिचो खाडसार सेवा समिति' द्वारा निर्मित दिव्य 'स्वतः उत्पन्न' एकत्व चेतना के साक्षात प्रतीक स्वयम्भूनाथ स्तूप मंदिर में, जिसकी 365 सीढ़ियाँ केवल संख्या नहीं, बल्कि 'समय-चक्र' का प्रतीक मानी जाती हैं- एक वर्ष के प्रत्येक दिन के लिए एक सीढ़ी की; समयाभाववश सीढ़ियों का अनुभव अधूरा रहा । यह सर्वश्रेष्ठ धर्म 'मानवता', सर्वव्यापी भाषा 'प्रेम' और सर्वाधिक गहरे भाव 'करुणा' का संवाहक है । जहाँ 'प्रार्थना-चक्र' घुमाते ही बाह्याभ्यंतर तक लयबद्ध हो उठता है । यही ध्यानपूर्ण आभ्यांतरिक लयबद्धता साहित्य-सृजन हेतु अपरिहार्य है, जिसकी झलक संध्याकालीन 'काव्य-गोष्ठी' और 'सम्मान समारोह' में स्पष्टतः दृष्टिगत हुई, जब नेपाली कवियों ने हिन्दी में और हिन्दी कवियों ने नेपाली भाषा में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर पारस्परिक आत्मीय सम्मान का साकार प्रदर्शन किया । क्योंकि अंततः साहित्य हमारी साझा जीवन-दृष्टि का ही संवाहक है ।

इसी जीवन-दृष्टि के साथ, भक्तिरस में डूबी मंडली के देवी-कीर्तन से उद्विग्नता शांत होने लगी । जब रात्रिभोजनोपरांत हम कुछ सदस्य सुनसान पथ पर पुनः 'चाइना मार्केट' की खोज में निकल पड़े, मार्ग में स्थापित अनेक गणपति देवस्थलों से संचारित धैर्य और विवेक तथा हनुमान-प्रतिमाओं की सचेत ऊर्जा आत्मशक्ति को जाग्रत कर रही थीं । संभवतः तभी लगा, मानो संकटहरणी माँ ने किसी अनिष्ट से हाथ पकड़कर हमें गंतव्य तक पहुँचा दिया हो । ईश्वर प्रतिमाओं से कहीं आगे का एक अवर्णित भाव है । यही अवर्णित भाव, हमारी आस्थाओं को सुदृढ़ करता है और देवस्थलों पर माथा टेकने हेतु एक लंबी यात्रा करने के पश्चात भी, बड़ा पुल निर्मित होने के उपरांत भी हम भारतीय अपनी सुपरिचित सहज निर्भयता दिखाते हुए सड़क पार करने से न चूके, न थके और प्रातः10 अप्रैल को काठमांडू के दरबार स्क्वायर पहुँच जाते हैं; जहाँ संस्कृति साँस लेती है; जिसकी नाड़ी स्वयं समय ठहरकर सुनता है । यूनेस्को-स्वीकृत यह विश्व-धरोहर मल्ल-शाह राजवंशों के ऐतिहासिक वैभव और 'देव-राज्य' अवधारणा का प्रमाण है, जब राजा विष्णु-अवतार माना जाता था। 'हनुमान-ढोका' एक 'जीवंत-रक्षक' है । अद्भुत सौंदर्य से परिपूर्ण काष्ठ-कला सुरक्षा एवं ऊर्जा-संतुलन व 'तंत्र-चिन्हों' के सूक्ष्म विज्ञान से समृद्ध है ।

समीपस्थ 'कुमारी घर' की 'जीवित देवी' परंपरा शाक्त-बौद्ध धर्मों के धार्मिक समन्वय का अनुपम उदाहरण है । प्राचीन कला और सांस्कृतिक गूँज यथावत संरक्षित है, जिसमें निरंतर सूक्ष्म भावों की जीवित चेतना ऊर्जस्वित होती रहती है । भूकंप-जनित क्षति के उपरांत जारी पुनर्निर्माण सिद्ध करता है कि इतिहास केवल पत्थरों में नहीं, जन-मानस की स्मृतियों और जिजीविषा में स्पंदित होता है । वापसी में यही स्पंदन चाय की चुस्कियों में महसूस करते हुए हम अग्रवाल धर्मशाला पहुँचे और तत्काल ही कार्यक्रम हेतु चल पड़े मीडिया और साहित्यिक संवाद हेतु सक्रिय और समर्पित शैक्षिक एवं शोध संस्थान, 'IACER' नेपाल की ओर; जहाँ 'PEN इंटरनेशनल' के 'नेपाल चौप्टर' द्वारा आयोजित 'बसंत काव्योत्सव' में सम्मिलित होना था । वरिष्ठ साहित्यकार भीष्म उप्रेती, नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान की पूर्व सदस्य सुश्रीलक्ष्मी माली सहित अनेक सम्मानित नेपाली साहित्यकारों से भेंट हुई और साहित्य-संपदा पुस्तकों का

विनिमय हुआ ।तत्पश्चात नेपाल स्थित भारतीय दूतावास के अधिकारी श्री धनेश द्विवेदी के आवास पर अनौपचारिक काव्य-गोष्ठी और आत्मीय भारतीय सुगंध से अभिसिक्त रात्रिभोज से संतुष्ट एवं संतृप्त होकर हम अगले दिवस के प्रस्थान-बिंदु पर आ पहुँचे ।

11 अप्रैल को प्रात: 5 बजे से ही आस्था की लम्बी कतारें, खेलते-कूदते, साइकिलिंग और व्यायाम करते, कर्म-पथ पर पग बढ़ाते जनों को निहारते हुए; सूर्य की किरणों के साथ, नदी, पहाड़ों, घाटियों के दृश्य स्मृति में बसाते हुए, चाय और अल्पाहार हेतु रुकते-रुकाते, और हाँ विशेषरूप से हिमालयी केले खोजते हम घुमावदार पहाड़ी मार्गों से प्रस्थान कर रहे थे - चितवन होते हुए लुम्बिनी की ओर जहाँ होटल सिद्धार्थ के द्वार पर मंगल कलश हमारी ओर; और हम महात्मा बुद्ध के दर्शनार्थ प्रतीक्षारत ।

लुम्बिनी, अर्थात् वैश्विक चेतना का केंद्र जहाँ विश्व बौद्ध परिसर में ऊपर उठती संरचना और स्वर्णिम आभा-युक्त थाईलैंड का मठ; श्वेत जापानी विश्व शांति स्तूप; खमेर शैली की भव्यता में गहन शांति को सँजोए हुए कंबोडिया का मठ; रंग, मंडल और प्रार्थना-चक्रों के मध्य तिब्बती मठ; सादगीपूर्ण जर्मनी का मठ; तथा ड्रैगन और प्रतीकात्मक नक्काशी से युक्त अरुणिम स्वर्णाभा में सुसज्जित चीन का मठ - सभी मिलकर यह समग्र संदेश देते हैं कि संस्कृति और ध्यान की विधियाँ भिन्न हो सकती हैं, किंतु चेतना एक ही है । संसार बदलता है, पर चेतना स्थिर है । सत्य एक है, पर उसे समझने के मार्ग अनेक हैं । काठमांडू स्थित धर्मकीर्ति विहार द्वारा निर्मित गौतमी भिक्षुणी विहार के द्वार पर थेरीगाथा में संकलित भिक्षुणियों की घनीभूत संघर्षानुभूतियाँ और आत्मबोध की शब्दायित संरक्षित संपदा के साथ, महाप्रजापती गौतमी स्मरण आती हैं जिन्होंने गौतम बुद्ध की जन्मदात्री माता माया देवी के निधन के पश्चात उनका पालन-पोषण किया और आगे चलकर बौद्ध मठों में भिक्षुणियों के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया ।

लुम्बिनी से अतुल्य समृद्ध भाव-संपदा और स्मृतियों की पोटली लिए हम खड़े थे भारत-नेपाल सुनौली बॉर्डर के इस पार; भावुक क्षणों में उस पार से आती अपनी मिट्टी की सुगन्धि महसूस कर रहे थे । तिरंगे में डूबा विशाल द्वार अपनी बाँहें फैलाए बुला रहा था हमें, साथ ही शिवावतार महायोगी भगवान् गोरखनाथ की साधनाओं का तपोबल खींच रहा था अपनी ओर । इस राह में गन्ने का रसपान कर आत्मा तृप्त हुई, वहीं विशाल वृक्षों का घना सान्निध्य ऐसा कि जैसे माँ का स्पर्श । हम हैं अंतिम पड़ाव गोरखपुर रेलवे स्टेशन पर, जहाँ प्रतीक्षालय तक जाने के लिए सीढ़ियों से सामान उतारते हुए और प्लेटफॉर्म पर पहुँचने के लिए उसे फिर चढ़ाते हुए यही अपेक्षा कर रहे थे कि अगली यात्रा में यहाँ स्वचालित सीढ़ियों की सुविधा भी मिल सके, यही सोचते-विचारते रेलगाड़ी के डिब्बों में चढ़ गए । विदा होते समय इतना भी अवसर न मिला कि ठीक से नमस्कार हो पाता । सो चल पड़े अपनी-अपनी राह पर । कितना कुछ अधूरा रह गया; देखना भी और लिखना भी ।

सच कहूँ तो एक समृद्ध साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा को किसी सुनिश्चित शब्द-सीमा में बाँध पाना सहज नहीं, क्योंकि बाहरी यात्रा के समानान्तर एक भीतरी यात्रा भी गतिमान है, जिसकी अनुभूति का शब्द- संयोजन कर पाना कठिन है । अंतत: बुद्ध का संदेश मेरे भीतर उतरता हुआ-सा प्रतीत होता है- संसार में रहो, पर उसमें खोओ मत, सो अपनी जीवन-यात्रा में स्वयं की खोज हेतु प्रयासरत मैं और मेरे पूजाघर में उठ रही है वातावरण को पवित्र करती नेपाली सुगन्धिम् धूप और तिब्बती सिंगिंग बाउल की ध्यानमयी अनुगूँज।

-डॉ. भावना तिवारी
आई-11, सेक्टर-27, गौतम बुद्ध नगर (नोएडा)-201301

विशेष सूचना

'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' त्रैमासिक पत्रिका के आगामी अंक हेतु लेख आमंत्रित हैं ।

'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' पत्रिका के आगामी अंक हेतु हिन्दी भाषा से सम्बंधित विविध विषयों पर लेख/आलेख, निबंध एवं शोध सामग्री भेजें। पत्रिका के स्थायी स्तम्भ 'साक्षात्कार' में वरिष्ठ साहित्यकारों, पत्रकारों, भाषाविदों, शिक्षाविदों, सरकारी कार्यालयों के उच्चाधिकारियों, प्रशासनिक सेवा अधिकारियों, विभिन्न देशों के राजनयिकों आदि के भाषा पर केंद्रित साक्षात्कारों को सम्मिलित किया जाता है । इसी तरह 'लोक भाषाओं का चमत्कार' स्तम्भ में किसी एक भारतीय भाषा/उपभाषा एवं बोलियों पर केंद्रित लेखों को सम्मिलित किया जाता है जिसे विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जाता है । अब तक बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, कुमाऊंनी, भोजपुरी, पंजाबी, अवधि, नेपाली, मैथिली, डोगरी, संस्कृत, संथाली, तमिल, कश्मीरी, मालवी, बघेली, हरियाणवी, बंगाली, कोंकड़ी, पवारी, गुजराती, तेलुगु, उड़िया एवं पूर्वोत्तर भारत के भाषाओं के विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं । 'युवा मत' स्तम्भ में देश के विभिन्न महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत शोधार्थियों एवं युवा लेखकों के भाषा पर केंद्रित शोधपरक लेखों को सम्मिलित किया जाता है । पत्रिका के 'आगामी अंक' हेतु हिन्दी भाषा पर केन्द्रित लेख/निबंध आर्मंत्रित हैं।

1. 'समाचार पत्रों एवं संचार माध्यमों में हिन्दी की स्थिति
2. हिन्दी की राष्ट्रीय स्वीकार्यता: समस्या एवं संभावनाएँ
3. संयुक्त राष्ट्र महासभा तक हिन्दी का विकासक्रम
4. साहित्य और सिनेमा से इतर भी हो हिन्दी का उत्थान
5. शिक्षा और शोध के रूप में हिन्दी की दशा और दिशा आदि

से सम्बंधित सारगर्भित लेख नीचे दिए गए ई-मेल पर भेजें।

E-mail : hindustanibhashabharati@gmail.com

भाषा-सेतु का उत्सव : काठमांडू की अविस्मरणीय यात्रा

8 अप्रैल, 2026 – यह तिथि केवल एक कार्यक्रम की नहीं, बल्कि दो देशों के भाषिक उत्सव के मिलन की तिथि बन गई । जब-जब राष्ट्र अपनी-अपनी भाषाओं का उत्सव मनाते हैं, तब केवल शब्दों का आदान-प्रदान नहीं होता, बल्कि संवेदनाओं, संस्कृतियों और हृदयों का सेतु निर्मित होता है । ऐसा ही अद्भुत अवसर तब आया, जब हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी, दिल्ली के संस्थापक अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक जी और एपेक नेपाल के अध्यक्ष श्री विश्वमोहन श्रेष्ठ जी ने मिलकर भाषा के इस महोत्सव का आयोजन काठमांडू में किया ।

एपेक नेपाल के 27वें वार्षिकोत्सव में हम 20 साहित्यिक मित्रों को ससम्मान आमंत्रित किया गया । उत्साह से भरे मन के साथ हम काठमांडू पहुँचे । सुबह 9:50 पर जैसे ही विमान ने काठमांडू की धरती को छुआ, वैसे ही एक आत्मीयता की सुगंध ने हमारा स्वागत किया । एयरपोर्ट पर ही एपेक नेपाल के प्रतिनिधियों, कवियों और साहित्यकारों ने अंगवस्त्र ओढ़ाकर हम सबका हार्दिक अभिनंदन किया। वह क्षण किसी औपचारिकता का नहीं, बल्कि अपनत्व का था। हमें स्नेहपूर्वक बस में बैठाकर होटल येलो पेगोडा ले जाया गया, जहाँ फूलों और जूस के साथ स्वागत ने मन को पुलकित कर दिया । होटल की सुसज्जित व्यवस्था रहने, भोजन और आतिथ्य सब कुछ अत्यंत उत्कृष्ट था ।

होटल में मेरे साथ सुश्री गरिमा संजय जी थीं । उनके सम्मानजनक आत्मीय व्यवहार ने मन प्रसन्न कर दिया । थोड़े विश्राम और भोजन के उपरांत हमने कार्यक्रम स्थल की ओर प्रस्थान किया । कार्यक्रम का संचालन लीला अनमोल जी ने अत्यंत गरिमा और सौम्यता से किया । अध्यक्ष विश्वमोहन श्रेष्ठ जी और राजेंद्र शलभ जी, एपेक नेपाल के कार्यकारी निदेशक की अद्भुत व्यवस्थाएँ हर क्षण अनुभव की जा सकती थीं । यह केवल एक साहित्यिक आयोजन नहीं था, बल्कि भावनाओं का विराट उत्सव था । इस अवसर की सबसे विशेष उपलब्धि थी "अनुभूति" नामक काव्य-संकलन का लोकार्पण । इसमें भारतीय और नेपाली कवियों की रचनाओं को एक ही पुस्तक में स्थान दिया गया था । इससे भी अधिक उल्लेखनीय यह कि भारतीय कविताओं का नेपाली में और नेपाली कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया गया था । यह कार्य डॉ. रश्मि शर्मा जी ने अत्यंत संवेदनशीलता के साथ संपन्न किया । "अनुभूति" वास्तव में केवल पुस्तक नहीं, बल्कि दो राष्ट्रों के हृदयों का संगम बन गई । इस पुस्तक में अपनी कविता को देख मन हर्षित हो उठा ।

इस अंतरराष्ट्रीय उत्सव की एक और विलक्षण विशेषता यह रही कि यहाँ भाषा की सीमाएँ मानो स्वयं संकुचा कर विलीन हो गईं । भारतीय कवियों ने आत्मीय प्रयास के साथ नेपाली भाषा में अपनी रचनाओं का सस्वर पाठ किया, वहीं नेपाली कवियों ने भी समान भाव-संवेदना के साथ हिन्दी में अपनी कविताएँ प्रस्तुत कीं । मैंने भी 'अनुभूति' में संकलित अपनी कविता का नेपाली में सस्वर वाचन किया । वह क्षण बहुत गर्व और हर्ष से भरा था । यह दृश्य केवल काव्य-पाठ का नहीं, बल्कि हृदयों के पारस्परिक अनुवाद का जीवंत प्रमाण था, जहाँ शब्द नहीं, संवेदनाएँ एक-दूसरे की भाषा बन गई थीं । इस स्नेहिल साहित्यिक संवाद के उपरांत सभी प्रतिभागियों को रुद्राक्ष की पावन माला तथा एक अत्यंत सुरुचिपूर्ण सम्मान-पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया । यह सम्मान केवल औपचारिकता नहीं था, बल्कि उस आत्मीय आदान-प्रदान का स्मृति-चिह्न था, जो दो राष्ट्रों के बीच सृजित हुए इस अद्भुत भाषा-सेतु का प्रतीक बन गया ।

शकुंतला मित्तल

अगले दिन हमने काठमांडू के प्रसिद्ध तीर्थस्थलों के दर्शन किए, पशुपतिनाथ मंदिर में दर्शन कर मन आध्यात्मिक शांति से भर गया, वहीं स्वयंभूनाथ स्तूप की ऊँचाइयों से काठमांडू का विहंगम दृश्य मन में बस गया । स्थानीय बाजारों में घूमते हुए हमने वहाँ की संस्कृति को निकट से अनुभव किया और स्मृतियों के रूप में कुछ वस्तुएँ भी साथ ले आए । हम दरबार स्क्वायर पहुँचे, जो एक प्राचीन शक्तिपीठ है । यहाँ की तांत्रिक परंपरा, देवी के समक्ष दी जाने वाली बलि-प्रथा और नेपाल के राजपरिवार से जुड़े अभिषेक संस्कारों का इतिहास इस स्थल को विशेष महत्त्व प्रदान करता है । वहाँ का वातावरण रहस्यमय, श्रद्धामय और ऊर्जा से परिपूर्ण प्रतीत हुआ । हर पड़ाव पर आदरणीय पाठक जी और सब मित्रों ने जिस आत्मीय प्रगाढ़ता का सामंजस्य बनाए रखा, वह अनिर्वचनीय और अविस्मरणीय है ।

तीन दिनों का यह प्रवास मानो एक स्वप्न-सा था जिसमें भाषा, साहित्य, संस्कृति और आत्मीयता का अद्भुत संगम था । इस यात्रा ने हमारे हृदय को अविस्मरणीय यादों से भर दिया । 10 अप्रैल की रात्रि को जब हम अपने घर लौटे, तब केवल स्मृतियाँ ही नहीं, बल्कि एक गहरा भाव साथ था, विश्व बंधुत्व का, प्रेम का और भाषा के उस वास्तविक उत्सव का, जो सीमाओं से परे जाकर मनुष्यता को जोड़ता है । इस अवसर पर आदरणीय सुधाकर पाठक जी ने एपेक नेपाल को भारत आने का आमंत्रण भी दिया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया । यह संकेत था कि यह संवाद और यह सेतु अब और भी विस्तृत होगा ।

निस्संदेह, यह यात्रा केवल एक संस्मरण नहीं, बल्कि एक अनुभूति है, जो सदैव हृदय में जीवित रहेगी । मैं हृदय की गहराइयों से हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के संस्थापक अध्यक्ष आदरणीय श्री सुधाकर पाठक जी को यह सुअवसर प्रदान करने के लिए धन्यवाद देती हूँ ।

-शकुंतला मित्तल
शिक्षाविद और साहित्यकार

भाषा का वैश्वीकरण और अनुवाद

शोध-सारांशः-

भाषा अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम होने के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संबंधों के सबसे मजबूत आधार स्तम्भ का भी कार्य करती है। भाषा के बिना मनुष्य का सर्वांगीण विकास असंभव है। भाषा का वैश्वीकरण तथा विभिन्न भाषाओं का एक-दूसरी भाषा में अनुवाद आज की परस्पर संबद्ध दुनिया के दो अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। भाषाओं के वैश्वीकरण के कारण भौगोलिक सीमाओं के पार का संचार, वैश्विक व्यापार तथा विभिन्न देशों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान निरंतर बढ़ रहा है, जिसमें अनुवाद एक वैश्विक पुल (World Bridge) के रूप में कार्य कर रहा है, जो विभिन्न भाषाओं के बीच आपसी संवाद को सरल, सहज तथा बहु-आयामी बना रहा है। भाषाई अनुवाद न केवल वैश्विक व्यापार को सहज एवं आसान बनाता है, अपितु विभिन्न भाषाओं के साहित्य, इंटरनेट और मनोरंजन की दुनिया (नेटफ्लिक्स, यूट्यूब आदि) के माध्यम से प्रत्येक महत्त्वपूर्ण जानकारी को वैश्विक तथा स्थानीय भाषाओं तक पहुँचाकर संपूर्ण ज्ञान का लोकतंत्रीकरण भी कर रहा है।

प्रस्तावनाः-

भाषा का वैश्वीकरण तथा भाषाओं का अनुवाद वर्तमान समय में एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में सामने आया है, जो आज के वैश्वीकरण के युग में अत्यंत प्रासंगिक है। भाषा के वैश्वीकरण से आशय है कि किसी एक भाषा का प्रयोग विभिन्न देशों, राज्यों तथा भाषाई क्षेत्रों की संस्कृतियों में किया जाना; तथा अनुवाद से तात्पर्य है किसी एक भाषा से किसी दूसरी भाषा में भावों, विचारों तथा लिखित सामग्री का भाषांतरण।

बीज शब्दः- भाषाई संस्कृति, वैश्वीकरण, अनुवाद, संचार, साहित्य

मूल शोध-पत्रः-

वर्तमान परिदृश्य में आज का युग वैश्वीकरण का युग है। आज सूचना-प्रौद्योगिकी, इंटरनेट, संचार, अंतरराष्ट्रीय व्यापार तथा आपस में सांस्कृतिक आदान-प्रदान आदि ने संपूर्ण विश्व को एक 'वैश्विक गाँव' के रूप में परिवर्तित कर दिया है। इस संपूर्ण प्रक्रिया के संचालन में भाषा की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रूप में प्रत्यक्ष हुई है। जब विश्व के विभिन्न देश, समाज और उनकी संस्कृतियाँ आपस में एक-दूसरे के साथ जुड़ती हैं, तो उनकी विभिन्न भाषाएँ भी परस्पर एक-दूसरे के संपर्क में आती हैं। यही स्थिति विश्व की विभिन्न भाषाओं के वैश्वीकरण को जन्म देती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भाषा का वैश्वीकरण न केवल किसी देश की एक भाषा के भौगोलिक प्रभुत्व तक ही सीमित है, अपितु यह बहुभाषिक आपसी संवाद की वैश्विक आवश्यकता के महनीय स्वरूप को भी रेखांकित करता है। उदाहरणार्थ वर्तमान समय में अंग्रेजी भाषा ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संचार की एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में स्थान पा लिया है। इसी प्रकार भारत की हिन्दी भी वैश्विक मंच पर अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा रही है। इस परिप्रेक्ष्य में साहित्य, सिनेमा, विज्ञान, तकनीक और व्यापार आदि सभी क्षेत्रों में भाषाओं के बीच निरंतर संवाद बढ़ा है। भाषाओं के मध्य यही अनुवाद महत्त्वपूर्ण प्रासंगिकता सिद्ध हुई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुवाद विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के मध्य एक महत्त्वपूर्ण सेतु के रूप में कार्य करता है। अनुवाद केवल शब्दों का रूपांतरण नहीं, बल्कि भाव, विचार और संस्कृति का संप्रेषण भी है। किसी देश का साहित्य, वहाँ का मौलिक दर्शन, विज्ञान या तकनीकी संबंधी ज्ञान तब तक विश्वव्यापी नहीं बन सकता, जब तक कि उसका अनुवाद अन्य भाषाओं में न किया जाए। यही कारण है कि वर्तमान समय में अनुवाद के माध्यम से विश्व-साहित्य अत्यंत समृद्ध हुआ है और ज्ञान का लोकतंत्रीकरण भी संभव हो सका है।

डॉ. संध्या द्विवेदी

इसके अतिरिक्त, अनुवाद सांस्कृतिक विविधता की रक्षा में भी सहायक है। यह छोटी और क्षेत्रीय भाषाओं को वैश्विक पहचान दिलाने का माध्यम बनता जा रहा है। साथ ही, यह पारस्परिक समझ, सहिष्णुता और विश्व-बंधुत्व की भावना को भी सुदृढ़ बनाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा का वैश्वीकरण एक अनिवार्य प्रक्रिया है और अनुवाद उसकी जीवन-रेखा। अनुवाद के बिना वैश्विक संवाद अधूरा है। यह न केवल भाषाओं को जोड़ता है, बल्कि मानवता को भी एक सूत्र में पिरोता है। उपर्युक्त विवेचन को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता हैख्र

1- भाषा का वैश्वीकरणः- भाषा का वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें एक भाषा का उपयोग विभिन्न देशों और संस्कृतियों में किया जाता है। यह प्रक्रिया वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और इंटरनेट के विस्तार के कारण संभव हुई है। आजकल अंग्रेजी भाषा का उपयोग वैश्विक स्तर पर किया जाता है, जो एक वैश्विक भाषा बन गई है।

2- अनुवादः- अनुवाद भाषाओं की एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें एक भाषा से दूसरी भाषा में सामग्री का भाषिक परिवर्तन किया जाता है। अनुवाद का उद्देश्य है कि एक भाषा में लिखी गई सामग्री को दूसरी भाषा में समझने योग्य बनाया जाए। अनुवाद के माध्यम से विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के बीच संचार को बढ़ावा देने का प्रयास प्रतिफलित होता है।

भाषा का वैश्वीकरण और अनुवाद का महत्त्व:-

भाषा का वैश्वीकरण और अनुवाद का महत्त्व इस प्रकार समझा जा सकता है:-

1. संचार को बढ़ावा देना:- भाषा का वैश्वीकरण और अनुवाद से विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के बीच संचार को बढ़ावा मिलता है ।

2. ज्ञान का आदान-प्रदान:- अनुवाद के माध्यम से विभिन्न भाषाओं में लिखी गई सामग्री को समझा जा सकता है और ज्ञान का आदान-प्रदान किया जा सकता है ।

3. संस्कृति का आदान-प्रदान:- भाषा का वैश्वीकरण और अनुवाद से विभिन्न संस्कृतियों के बीच मौलिक आदान-प्रदान होता है, जिससे एक-दूसरे की संस्कृति को समझने का प्रयास फलीभूत होता है ।

4. व्यापार और व्यवसाय:- भाषा का वैश्वीकरण और अनुवाद से व्यापार और व्यवसाय को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों में अपने उत्पादों और सेवाओं के प्रचार-प्रसार हेतु उन भाषाओं में सामग्री का उपलब्ध होना एक अनिवार्य आवश्यकता है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा का वैश्वीकरण और अनुवाद एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में सामने आया है, जो आज के वैश्विक युग में अत्यंत प्रासंगिक तथा सर्व उपयोगी है । इस दृष्टि से निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है- हिन्दी, उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, असमी, गुरखाली और कश्मीरी आदि भाषाएँ आर्य-भाषाएँ हैं, जो संस्कृत की परंपरा से उत्पन्न हुई हैं । भारत से बाहर आर्य भाषाओं का संबंध हिंद-जर्मन भाषा समूह से है। कहते हैं, हिंद-जर्मन भाषाएँ बोलने वाले लोग किसी समय एक ही जगह रहते थे और उसी कबीले की भाषा से संसार की समस्त आर्य भाषाएँ निकली हैं । प्राचीन पारसी, लातीनी, केल्ट, त्युतनी, जर्मन और स्लाव आदि भाषाओं के साथ हमारी संस्कृति का बहुत निकट संबंध था और वह नाता उनके आजकल के वंशजों के साथ भी चला आता है । लातिनी प्राचीन इटली की भाषा थी और अब इटली, फ्रांस और स्पेन में उसकी वंशज भाषाएँ मौजूद हैं । प्राचीन केल्ट की मुख्य वंशज आजकल की गैलिक अर्थात् आयरलैंड की भाषा हैं । जर्मन ओलंदेज (डच), अंग्रेजी, डेन स्वीडिश आदि भाषाएँ जर्मन या त्युतनी परिवार की हैं । आधुनिक रूस तथा पूर्वी यूरोप की भाषाएँ स्लाव परिवार की हैं । इन सब भाषाओं का परिवार आर्य वंश कहलाता है । हिंद-जर्मन-परिवार की भाषाओं में जो सामानता है, उसी से यह अनुमान किया गया है कि प्राय: समस्त यूरोप के लोग उसी परिवार से निकले हैं, जिस परिवार के भारतीय आर्य थे और भारतीय आर्यों का ऋग्वेद केवल भारतीय आर्यों की ही नहीं, बल्कि विश्व भर के आर्यों की सबसे प्राचीन पुस्तक है।-1 इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि भाषाओं का उदय तथा विकास एक निश्चित क्रम में समय के सापेक्ष हुआ है । अत: उनके वैश्विक प्रसार के लिए अनुवाद तथा भाषाई शिक्षण अत्यंत आवश्यक है । इस 'मेरा दागिस्तान' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

''जब मैं अपनी सारी बीमारियों से मुक्त हो जाऊँगा,
न किसी डॉक्टर की जरूरत होगी,
न किसी दवा- दारू की
पर मेरे लिए तो अपनी भाषा में न गा सकना ही,
सबब है बीमारी का
अगर कल मेरी भाषा लुप्त हो जाती है,
तो मैं क्या करूँगा भला जीकर
आज ही मर जाऊं तो बेहतर है।''-2

अत: स्पष्ट है कि भाषा के बिना मनुष्य का जीवन सारहीन है, क्योंकि मानव को मानव बनाने की क्रिया में भाषा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान है । संपूर्ण सृष्टि में सभी जीवधारियों में मानव अपनी भाषा एवं विचारशील गुण होने के कारण ही सबसे श्रेष्ठ एवं भिन्न है । मनुष्य को एक सूत्र में बाँधने की कला भाषा को ही आती है । इस संबंध में विलियम कैरे ने 1815 में अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा कि उन्हें एक ओर हिन्दी क्षेत्र की बोलियों में शब्दावली की समानता होने पर भी रूप-तंत्र की भिन्नता प्रतीत हुई है, और दूसरी ओर हिन्दी के विस्तार के प्रति बड़े आश्वस्त भाव से उन्होंने पहली निगाह में लिखा है, ष्इस बोली से मैं सारे हिंदुस्तान को समझा सकूंगा ।'-3

भाषा की असली प्रयोगशाला समाज है, जिसके माध्यम से नित नवीन कार्य-व्यापार संपादित एवं घटित होते रहते हैं । साथ ही उनके परिष्कृत एवं परिमार्जित स्वरूप का निर्माण होता है । मानव की सोच को आकार प्रदान करना भाषा के द्वारा ही संभव है । इस परिप्रेक्ष्य में अतग्रलिखित कथन विचारणीय है - ष्भाषाएँ हमारी पैतृक संपत्ति हैं । इन्हें संजोकर रखना हम सबका दायित्व है । यह हमारे पूर्वजों की जिजीविषा ही थी कि सैकड़ों वर्ष की गुलामी के दौर में तमाम आघातों और आक्रमणों को सहते हुए भी उन्होंने अपनी भाषा और संस्कृति को बचाए रखा । भूमंडलीकृत विश्व में आज का दौर संक्रमण का दौर है, जहाँ औपनिवेशिक शासन और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सहारे अंग्रेजी ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है । अंग्रेजी की इस प्रभुता को चुनौती देते हुए सभी विकसित देशों ने अपनी राष्ट्रभाषा में विकास किया है । अपनी मातृभाषा में चिंतन और मनन की प्रक्रिया मौलिक स्वरूप में होती है । भारत में आज के समकालीन समय में हिन्दी ज्ञान-विज्ञान, स्वतंत्रता-संग्राम, विचार, संस्कृति तथा संस्कार की भाषा है । भारत वही राष्ट्र है जब बारहवीं

शताब्दी से पहले यहाँ की भाषा संस्कृत हुआ करती थी, तो संपूर्ण विश्व के लोग यहाँ के दर्शन और वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा आर्थिक व्यवस्था के कायल हुआ करते थे ।'-4

आज विश्व में अनेक भाषाएँ बोली और समझी जाती है । मानव संबंधों का निरंतर विकास एवं प्रसार होता जा रहा है । विश्व के किसी भी भाग में जब कोई प्राकृतिक आपदा जनजीवन को त्रस्त एवं ध्वस्त कर देती है, तो विश्व के कोने-कोने से व्यक्ति उनकी सहायता करने के लिए तत्पर हो जाते हैं । चाहे वह भयंकर बाढ़ की विभीषिका हो या भूकंप की, उससे पीड़ित जन समूह को राहत देने के लिए प्राय: सभी देशों के व्यक्ति संबद्ध हो जाते हैं । इन्हीं सुदृढ़ मानवीय संबंधों के आधार पर लोग विश्व शांति की संकल्पना को साकार होते देखने लगे हैं । भारतीय मनीषा ने हजारों वर्ष पहले ही विश्व को एक कुटुंब समझने का सिद्धांत प्रवर्तित किया था, जिसे लोग 'वसुधैव कुटुंबकम्' के नाम से जानते हैं । पूरी वसुधा ही कुटुंब है, यह संकल्पना भारतीय मनीषियों ने ही की थी । विश्व ग्राम का अंत: संबंध विश्व भाषा से संपृक्त है । जब विश्व एक ग्राम बन जाएगा, तो उसकी एक विश्व भाषा भी बनेगी और इसी भाषा के माध्यम से संसार के सभी कार्य-व्यापार संपादित एवं संपन्न होंगे । विश्व भाषा के निर्माण, प्रचार-प्रसार, उपयोग एवं प्रयोग में अनुवाद की अनिवार्य एवं महती भूमिका होगी । विश्व की सभी भाषाएँ विश्व भाषा से संबंध बनाना चाहेंगी और संबंधों के निर्माण में अनुवाद की सबसे बड़ी भूमिका होगी ।

अनुवाद एक सेतु का कार्य करता है । मानव जीवन में अनुवाद का सर्वाधिक महत्त्व है । विश्व के किसी कोने में जब अविष्कार का अन्वेषण होता है, तो उसकी पूरी और सही जानकारी सभी देशों के वासियों को अनुवाद के माध्यम से ही होती है । अनुवाद ने हमारे जीवन को बदल कर रख दिया है । इसने संस्कृति एवं सभ्यताओं को भी प्रभावित किया है । अनुवाद ने खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, सोच-विचार आदि सभी को परिवर्तित कर दिया है । ऐसा लगता है कि अनुवाद ने भारतीयों को सबसे अधिक प्रभावित किया है । पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रति भारतियों की आसक्ति अनुवाद की ही देन है । पाश्चात्य जगत भारतीय संस्कृति और सभ्यता अपना रहा है । इसमें भी अनुवाद का ही हाथ है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह 'अनुवाद' है क्या ? 'अनुवाद' संस्कृत भाषा का शब्द है । यह एक संयुक्त शब्द है, जिसमें 'वाद' के पूर्व 'अनु' उपसर्ग लगाकर इसका निर्माण हुआ है । 'अनु' का शाब्दिक अर्थ है 'पश्च' या 'पीछे' और 'वाद' का अर्थ है 'कथन' । 'पश्च' कथन अर्थात् बाद में 'कहना' । 'अनुवाद' किसी मूल पाठ या कथन का अनुवर्ती होता है । 'वाद' शब्द का निर्माण संस्कृति की 'वद्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है- 'कहना' । इस प्रकार अनुवाद का अर्थ होता है ख्र 'पहले कही गयी किसी बात को बाद में कहना'।

आज अनुवाद को 'Translation' के अर्थ में अधिक प्रयोग किया जाता है । ज्तंदेसंजपवद शब्द भी दो शब्दों से मिलकर बना है- 'Trans' और 'Lation' । 'Trans' का अर्थ है 'पार' और 'Lation' अर्थ है 'जाना' अत: 'Translation' का अर्थ हुआ 'एक पार से दूसरी पार ले जाना' । भारत में 'अनुवाद' का प्रचलन प्राचीन काल से किसी-न-किसी रूप में होता आया है, परंतु यह बताना कठिन है कि 'अनुवाद' का प्रयोग भारत में कब और किस प्रकार लाया गया । महर्षि पाणिनि के ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' में 'अनुवादे चरणानाम्' का प्रयोग मिलता है । न्याय दर्शन में पुनरुक्ति का पर्याय अनुवाद को माना गया है । उसमें लिखा है- 'नानुवाद पुनरुक्तयोर्विशेष: शब्दाभ्यासोपपन्ने' ।

प्राचीन काल में शिक्षा पद्धति 'मौखिक' पद्धति पर आधारित थी, इसलिए यह शब्द बोलने के अर्थ में प्रयोग लाया गया, परंतु आज इसका प्रयोग लिखित रूप में होता है । 'न्यायशास्त्र' में अनुवाद शब्द का प्रयोग इस प्रकार मिलता है-

"विध्यर्थ श्वादानुवादवचन विनियोगात ।
विधिविहिततस्यानु वचमनुवाद:।''-5

अर्थात् विधि और विहित का अनु वचन ही आज 'अनुवाद' है । भाषाविद् नीडा ने अनुवाद को तीन प्रणालियों में विभाजित किया है- 1- शाब्दिक अनुवाद, 2-भावानुवाद, 3-पर्यायों के आधार पर अनुवाद । शब्दार्थ चिंतामणि कोश में 'अनुवाद' का अर्थ इस प्रकार है- 'प्राप्तस्य पुन: कथने या ज्ञातार्थस्य प्रतिपादने।' अनुवाद करने की तीन प्रतिक्रियाएँ होती हैं :- 1-पाठ -विश्लेषण, 2- पाठ-अंतरण, 3- पाठ- पुनर्गठन । विश्लेषण में पाठ का भाव, अर्थ और संदर्भ भली प्रकार समझा जाता है । अंतरण में मूल भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में किया जाता है । मूल भाषा को स्रोत भाषा तथा अनुवाद की भाषा को लक्ष्य भाषा कहा जाता है । पुनर्गठन में यह देखा जाता है कि मूल पाठ का पूरा अनुवाद हुआ है या नहीं । इसके लिए दोनों पाठों के वाक्य का मिलान किया जाता है, साथ ही यह भी देखा जाता है कि अनूदित भाषा के वाक्यों की संरचना उपयुक्त और संगत हुई है या नहीं । अनुवाद में यदि कोई कमी रह जाती है, तो पुनर्गठन में वह कमी दूर कर दी जाती है । तत्पश्चात वह अनूदित पाठ किसी अधिक अनुभवी अनुवादक या उच्च अधिकारी को जाँचने के लिए भेज दिया जाता है । इसके बाद सही अनुवाद सामने आते हैं । अंत में निकट भविष्य में जब कभी कोई विश्व भाषा बनेगी, तो अनुवाद की उपयोगिता एवं महत्ता और भी अधिक हो जाएगी । विभिन्न भाषाओं के अनुवादक अपनी-अपनी भाषाओं में

उसे विश्व पाठ का अनुवाद कर अपने भाषा-भाषियों के लिए उपलब्ध कराया करेंगे । इस आधार पर कहा जा सकता है कि अनुवाद का मानव जीवन पर अब तक जो प्रभाव रहा है वह आगे चल कर बहुत अधिक बढ़ जाएगा । मानव जीवन अनुवाद पर ही परिचलित एवं संचालित होने लगेगा । इस प्रकार अनुवाद, स्रोत भाषा के शब्दार्थ, उसके पाठ तथा अभिव्यंजना और अभिव्यक्ति की दृष्टि से लक्ष्य भाषा में सहज मानकों द्वारा भाषांतरण का क्रम है ।

अनुवाद में अर्थ और शिल्प दोनों का समान महत्त्व होता है। अनुवाद के विषय में एक और प्रश्न सामने आता है कि अनुवाद विज्ञान है या कला ? इस प्रश्न को स्पष्ट करते हुए श्री थियोडर सेवरी ने लिखा है- "इसकी (विज्ञान और कला) तुलना चित्र कला और फोटोग्राफी जैसी कलाओं से भी की जा सकती है, क्योंकि इन दोनों कलाओं में मूल पदार्थ (Object) होता है और चित्रकार अथवा फोटोग्राफर अपनी कला से उसका चित्र अथवा फोटो खींचता है । कई बार यह चित्र मूल रूप से भी सुंदर होता है । इस अर्थ में यदि दोनों कलाएँ कला के क्षेत्र में आती हैं तो अनुवाद भी कला है; क्योंकि अनुवादक मूल कृति को अपनी कला के माध्यम से इसी भाषा में अभिव्यक्त करता है । अनुवाद विज्ञान होने का भी दावा कर सकता है । विशेषकर उस स्थिति में जब विज्ञान अथवा गणित की सूत्रों का भी अनुवाद किया जाता है । इस स्थिति में अनुवाद यथातथ्य होता है और उसका वही स्वरूप होता है जो किसी वैज्ञानिक विषय-वस्तु का होता है ।"-6

भाषा नदी के जल की तरह निरंतर प्रवाहित होती रहती है । भाषा में उदारता एवं ग्रहणशीलता होनी चाहिए । जो भाषा अन्य भाषाओं के शब्द निरंतर ग्रहण करती रहती है, वह जीवंत बनी रहती है । जिस भाषा में शब्दों की ग्रहणशीलता का अभाव हो जाता है, वह भाषा अपना अस्तित्व अधिक समय तक बनाये नहीं रख सकती । ग्रहणशीलता के अभाव में अनेक भाषाएँ अब तक मृत हो चुकी हैं । इसलिए भाषा के अस्तित्व की रक्षा के लिए उसका ग्रहणशील होना अनिवार्य और अपरिहार्य है । अंग्रेजी और हिन्दी ऐसी भाषाएँ हैं जिनमें ग्रहणशीलता है । इसलिए इनका अस्तित्व निरापद है । भविष्य में वही भाषा विश्वभाषा बनेगी, जिसमें नवीन-से-नवीन शब्दों को ग्रहण करने एवं अपनाने की क्षमता होगी । भाषा और अनुवाद का अन्योन्याश्रित संबंध है और विश्वभाषा के लिए तो अनुवाद एक अपरिहार्य आवश्यकता है । विश्वभाषा को सभी प्रचलित भाषाओं के शब्द अपनाने होंगे । यह दुष्कर कार्य अनुवाद के अतिरिक्त अन्य कोई साधन या माध्यम नहीं कर सकता है । विश्व की समस्त भाषाओं की शब्दावली विश्वभाषा में समाहित करनी होगी तथा उन शब्दों से संबंधित व्युत्पत्तियाँ और अर्थ भी देने होंगे । इस कार्य के संपादन में भी अनुवाद को ही आगे आना होगा । विश्व एक ग्राम में परिणत हो जाएगा, तब सभी सभ्यताएँ एवं संस्कृतियाँ भी मिलकर एक नई सभ्यता एवं संस्कृति को जन्म देंगी । यही सभ्यता और संस्कृति विश्व सभ्यता एवं विश्व संस्कृति के रूप में जानी-पहचानी तथा अपनायी जाएगी।

सुप्रसिद्ध भाषा विज्ञानी और कोशकार भोलानाथ तिवारी जी अनुवाद को इस प्रकार चित्रित करते हैं- भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद है- इन्हीं प्रतीकों की प्रतिस्थापन अर्थात एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम (कथनतः और कथ्यतः) समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग । इस प्रकार अनुवाद का 'निकटतम समतुल्य और सहज प्रतिप्रतीकन' यथासाध्य होना चाहिए कि स्रोत भाषा के कथ्य में लक्ष्य भाषा में आने पर न तो विस्तार हो, न संकोच या अन्य किसी प्रकार का परिवर्तन । साथ ही स्रोत भाषा में कथ्य और अभिव्यक्त का जैसा सामंजस्य हो, लक्ष्य भाषा में अनूदित होने पर भी यथासाध्य दोनों का सामंजस्य वैसा ही हो । संक्षेप में अनुवाद कथनतः और कथ्यतः निकटतम सहज प्रतिप्रतीकन प्रक्रिया है।-7 उपर्युक्त कथन में अनुवाद के महत्त्वपूर्ण तत्वों को समाहित करते हुए उसकी मौलिक प्रकृति का सांगोपांग विवेचन किया गया है ।

इसी प्रकार यह कथन भी उल्लेखनीय है- 'प्राचीन भारत में यह संवाद मुख्य रूप से धार्मिक साहित्य ग्रंथों के आदान-प्रदान तथा उनके अनुवाद के माध्यम से हुआ । वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण जैसे ग्रंथ जो मूलतः संस्कृत में लिखे गए, उनका दक्षिण भारत में प्रचार-प्रसार हुआ तथा कई ग्रंथों का दक्षिण भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी हुआ । यथा- रामायण के वर्तमान समय में लगभग तीन सौ संस्करण मौजूद हैं, तमिल में कंबन रामायण तथा तेलुगु में श्री रंगनाथ रामायणम उनमें से एक हैं । यही कारण है कि दक्षिण भारतीय भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्द और तत्व भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं । जैन और बौद्ध धर्म के उपदेशों द्वारा भी उत्तर और दक्षिण भारत में विचारों का आदान-प्रदान हुआ, जिससे भाषाई संवाद को प्रोत्साहन मिला । आगे चलकर मध्यकाल में भक्ति आंदोलन ने इस भाषाई और सांस्कृतिक संबंध को और भी सुदृढ़ करने का कार्य किया ।'-8

इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा के वैश्वीकरण से जहाँ एक ओर उस भाषा के माध्यम से संपूर्ण विश्व को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास प्रतिफलित होगा, वहीं दूसरी ओर अनुवाद के माध्यम से भाषाओं के मध्य आपसी समन्वय स्थापित होगा, जो समस्त भाषाओं के ज्ञान-विज्ञान को समवेत रूप से वितरित व प्रसारित करने में सफल सिद्ध होगा ।

निष्कर्षः- अंततः कहा जा सकता है कि भाषा का वैश्वीकरण आधुनिक युग की अपरिहार्य एवं वास्तविक आवश्यकता का

परिकलित उपचार है, जिसने विश्व को संवाद और संपर्क के एक व्यापक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया है । इस परिवेश में अनुवाद की भूमिका अत्यंत केंद्रीय और सार्थक हो जाती है । अनुवाद न केवल विभिन्न भाषाओं के बीच संप्रेषण को संभव बनाता है, बल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान, ज्ञान-विस्तार और वैश्विक समझ को भी सुदृढ़ बनाता है । इस प्रकार, भाषा के वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अनुवाद केवल एक तकनीकी कार्य ही नहीं है, बल्कि मानवता को जोड़ने वाला सृजनात्मक और सांस्कृतिक सेतु भी है । इसके माध्यम से विविधता में एकता की भावना को बल मिलता है और विश्व समुदाय अधिक समन्वित एवं सहिष्णु बनता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1- आचार्य रामधारी सिंह शदिनकरश : संस्कृति के चार अध्याय ; पृष्ठ संख्या-35, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज ; छठवाँ संस्करण (पेपरबैक) : 2021 ई.

2- मा. देवेंद्र प्रताप सिंह : हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक पत्रिका), ष्मेरा दागिस्तानष ; पृष्ठ संख्या-116, हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रकाशन, 12-बी, कमला नेहरू रोड, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश-211001 ; भाग-85, अंक : 1, जनवरी-मार्च : 2024 ई.

3- डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास ; पृष्ठ संख्या-18, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सोलहवाँ संस्करण : 2002 ई.

4- मा. देवेंद्र प्रताप सिंह : हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक पत्रिका) ; पृष्ठ संख्या-115, हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रकाशन, 12-बी, कमला नेहरू रोड, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश-211001 ; भाग-85, अंक : 1, जनवरी-मार्च : 2024 ई.

5- मा. कैलाशचंद्र भाटिया ; प्रयोजनमूलक हिन्दी प्रक्रिया और स्वरुप ; पृष्ठ संख्या-123, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली ; संस्करण- प्रथम : 2005 ई.

6- मा. विनोद गोदरे ; प्रयोजनमूलक हिन्दी ; पृष्ठ संख्या-131, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ; संस्करण : 2007 ई.

7- डॉ. भोलानाथ तिवारी : अनुवाद विज्ञान ; पृष्ठ संख्या-18, परमहंस प्रेस, दिल्ली-110006 ; प्रथम संस्करण : 1972 ई.

8- मा. देवेंद्र प्रताप सिंह : हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक पत्रिका) ; पृष्ठ संख्या-158-159, हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रकाशन, 12-बी, कमला नेहरू रोड, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश-211001 ; भाग-85, अंक : 4, अक्टूबर-दिसंबर : 2024 ई.

– डॉ. संध्या द्विवेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

महात्मा गाँधी बालिका विद्यालय (पीजी) कॉलेज, फिरोजाबाद

उस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए जो देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती हो, अर्थात् हिन्दी !

-रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की नि: शुल्क सभाकक्ष योजना

साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन हेतु नि:शुल्क 'सभाकक्ष' उपलब्धता संबंधी महत्त्वपूर्ण सूचना :-

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा लेखकों, साहित्यकारों, शिक्षाविदों, साहित्यिक/सांस्कृतिक संस्थाओं के लिए साहित्यिक कार्यक्रमों जैसे पुस्तक लोकार्पण, पुस्तक परिचर्चा, काव्य गोष्ठी, विमर्श, संगोष्ठी, सम्मान समारोह आदि के लिए अकादमी का 'सभाकक्ष' नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाएगा।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एक स्व-वित्तपोषित संस्था है जो अपने सीमित संसाधनों से विभिन्न योजनाओं का कार्यान्वयन करती है। अपने कार्यों को विस्तार देते हुए अकादमी ने रोहिणी, दिल्ली में एक कार्यालय बनाया है, जिसमें अन्य सुविधाओं के साथ ही 60-65 व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था वाला सुसज्जित वातानुकूलित सभाकक्ष भी है। इस हॉल में मंच, पोडियम, माइक आदि की व्यवस्था है। अकादमी की केंद्रीय समिति ने निर्णय लिया है कि अकादमी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति संवर्धन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता एवं नैतिक जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए कार्यालय स्थित सभागार को साहित्यिक आयोजनों हेतु नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाएगा।

सभाकक्ष में कार्यक्रम आयोजन हेतु सामान्य नियमावली-

1. सभाकक्ष सीमित समयावधि के लिए पूर्णतया नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाएगा ।

2. सभाकक्ष की नि:शुल्क बुकिंग 'पहले आओ-पहले पाओ' और उपलब्धता के आधार पर की जाएगी।

3. आयोजन के लिए लिखित रूप/ईमेल द्वारा, कार्यक्रम के विवरण सहित आवेदन करना होगा तथा आयोजन अवधि में पूर्ण अनुशासन बनाये रखने की सहमति देनी होगी।

4. सभाकक्ष में केवल साहित्यिक आयोजनों की ही अनुमति होगी और अकादमी की केंद्रीय समिति का निर्णय ही अंतिम माना जाएगा।

नोट : नि:शुल्क सभाकक्ष की बुकिंग के लिए संपर्क करें :-

सुधाकर पाठक

अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

प्लॉट 19-20, पॉकेट बी-5, सेक्टर 7, रोहिणी,

(निकट रोहिणी पूर्व मेट्रो स्टेशन), दिल्ली-110085

ईमेल: hindustanibhashabharati@gmail.com

Info@hindustanibhadhaakadami.com

मोबाइल- 9873556781 / 9968097816

वेबसाइट : www.hindustanibhashaakadami.com

हिन्दी के विकास में वाराणसी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ. श्याम किशोर पाण्डेय

भारत की सांस्कृतिक विरासत, आध्यात्मिकता, सर्वधर्म समभाव, वैदुष्य को सँभालने, परिष्कृत करने और कालजयी स्वरूप प्रदान करने में वाराणसी नगरी का बहुत बड़ा योगदान है । भारत की सामासिक एकता की संस्कृति, बहुभाषिकता एवं धार्मिक सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति है, वाराणसी, जिसे काशी और बनारस के नामों से भी संबोधित किया जाता है ।

वाराणसी ने जिस तरह से संस्कृत भाषा-साहित्य और उसमें निहित ज्ञान की राशि को अक्षुण्ण और कालजयी स्वरूप प्रदान करने के लिए त्याग और तपस्या की है, उसी तरह से इसने हिन्दी के विकास और संवर्धन में भी अपनी अग्रणी भूमिका निभाई है । हिन्दी साहित्य के आदिकाल से ही खड़ी बोली का रुप यत्र-तत्र देखने को मिल जाता है । चौदहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो की पहेलियों में खड़ी बोली हिन्दी का रूप दिखाई देता है । बाद में, संतों की वाणियों में खड़ी बोली का स्वरूप प्रकट रूप से दिखाई पड़ता है । संत कबीर, दादू, रैदास, बाबा दीन दयाल गिरि आदि जैसे संतों की वाणी में खड़ी बोली हिन्दी का सुर सुनाई पड़ता है और इन संतों की कर्मभूमि वाराणसी ही रही है;

"नैया बिच नदिया डूबति जाय" (कबीर)

"जेते फल ते नमत हो, ऐ हो धीर रसाल।
ते ते ऊँचे होत हौं, सोभा होति विसाल।।" (बाबा दीन दयाल गिरि)

प्रथम स्वाधीनता संग्राम (1857 ई.) के बाद जब ब्रिटिश सरकार ने अंग्रेज अधिकारियों को भारत की भाषा हिन्दी सिखाने का मन बनाया, तो उन्होंने कलकत्ता के फोर्ट विलियम में ही हिन्दी के चार विद्वानों को रखकर हिन्दी सिखाने की शुरुआत की । उसी समय, वाराणसी के राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' तथा राजा लक्ष्मण सिंह ने हिन्दी का ठाठ खड़ा करना शुरू कर दिया, क्योंकि तब तक खड़ी बोली हिन्दी में सुव्यवस्थित एवं परिमार्जित गद्य का अभाव था ।

आधुनिक हिन्दी खड़ी बोली के जनक कहे जाने वाले भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितम्बर,1850 ई. को वाराणसी के एक धनाढ्य वैश्य परिवार में हुआ था । भारतेन्दु ने हिन्दी की सर्वांगीण उन्नति की । खड़ी बोली हिन्दी के स्वरूप को निखारने और खड़ी बोली हिन्दी में साहित्य रचना करने वाले नये लेखकों को तैयार करने की दृष्टि से भी उनका योगदान अभूतपूर्व है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वयं भी साहित्य की हर विधा में खूब लिखा तथा पंडित प्रताप नारायण मिश्र, उपाध्याय बदरी नारायण 'प्रेमघन' , ठाकुर जगमोहन सिंह, पं. बालकृष्ण भट्ट जैसे साहित्यकारों को भी तैयार किया, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। भारतेंदु ने "कवि वचन सुधा" (1868), "हरिश्चंद्र मैग्जीन" (1873), ''हरिश्चंद्र चंद्रिका"(1874), "बाला बोधिनी" (1874) जैसी कई पत्रिकाओं का शुभारंभ किया । इन पत्रिकाओं के माध्यम से कई नये लेखकों को तैयार करने का मार्ग प्रशस्त हुआ । हिन्दी के व्यावसायिक रंगमंच की शुरुआत भी भारतेन्दु ने ही की । व्यावसायिक रंगमंच का प्रारंभ वाराणसी के बनारस थिएटर (पुराना नाचघर) में 03 अप्रैल, 1868 ई. को प्रदर्शित शीतला प्रसाद त्रिपाठी के नाटक "जानकी मंगल" से होता है । भारतेन्दु हरिश्चंद्र की प्रेरणा से ही सन् 1884 में "नेशनल थिएटर" बना जिसके लिए उन्होंने अपने प्रसिद्ध नाटक "अंधेर नगरी" की रचना सिर्फ एक रात में की । भारतेन्दु के बाद के नाटककारों में जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविंद दास, उदय शंकर भट्ट, लक्ष्मी नारायण लाल के नाम महत्त्वपूर्ण हैं । सन् 1883में "ब्राह्मण" पत्र के माध्यम से प्रताप नारायण मिश्र जी ने व्यंग्य निबंधों की शुरुआत की । बाद में, 'व्यंग्य' साहित्य की एक स्वतंत्र विधा ही बन गई । भारतीय राजनीति में आने पर और वाराणसी को अपना कर्म क्षेत्र बनाने के बाद महामना पं. मदन मोहन मालवीय ने 1892 ई. में ही अदालतों में नागरी लिपि के प्रयोग से संबंधित अपना अभियान शुरु कर दिया था । इसी तरह से, सन् 1910 से 1918 तक, जब तक वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष थे, तब तक उन्होंने हिन्दी और देवनागरी लिपि के विकास के लिए कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के वाराणसी आगमन और उनके द्वारा प्रारंभ की गई "सरस्वती" पत्रिका के संपादन के साथ ही खड़ी बोली हिन्दी के गद्य में एक नया चमत्कार पैदा हुआ । महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने हिन्दी के सभी लेखकों को हिन्दी व्याकरण के नियमों का पूर्ण रूप से अनुपालन करने हेतु अभिप्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। व्याकरण के अनुशासन का पालन करने से हिन्दी भाषा की प्रांजलता में और निखार आया । साथ ही, "सरस्वती" पत्रिका ने कई तेजस्वी लेखकों को तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया, इनमें वाराणसी के लेखकों में बाबू श्याम सुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल, मुंशी प्रेमचंद, जय शंकर प्रसाद आदि के नाम प्रमुख हैं । जगन्नाथ दास "रत्नाकर" जैसे श्रेष्ठ कवियों की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि वाराणसी ही है । वाराणसी के सपूत बाबू देवकी नंदन खत्री ने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नये अध्याय का शुभारंभ किया । उनके द्वारा लिखित उपन्यास "चंद्र कांता संतति" की ख्याति इतनी हुई कि मराठी, गुजराती, बंगाली भाषियों ने भी इस पुस्तक को पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी । मुंशी प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यासों एवं कहानियों के क्षेत्र में हिन्दी को बुलंदियों तक पहुँचाया । वाराणसी के शिव प्रसाद सिंह तथा काशीनाथ सिंह ने हिन्दी उपन्यासों तथा कहानी के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए हैं । जय शंकर प्रसाद जी की कालजयी

शेष पृष्ठ संख्या 33 पर

घरों से छूट रहा है मातृभाषाओं का संस्कार

आज का समय तकनीक और आधुनिक जीवनशैली का समय है । इस बदलती दुनिया में नई भाषाएँ, नए विचार और नई संस्कृति तेजी से हमारे जीवन में प्रवेश कर रहे हैं । लेकिन इसी परिवर्तन के बीच एक गंभीर चिंता भी जन्म ले रही है- मातृभाषाएँ घरों से धीरे-धीरे लुप्त हो रही हैं । यह केवल भाषा का संकट नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और पारिवारिक बंधनों का भी क्षय है ।

मातृभाषा हमारी पहचान, संस्कृति, परंपरा और भावनाओं का आधार होती है । किसी भी समाज की सभ्यता और संस्कार उसकी भाषा में ही सुरक्षित रहते हैं । यदि भाषा कमजोर होती है, तो संस्कृति भी कमजोर पड़ जाती है । इसी कारण आज हर एक व्यक्ति के मन में ये प्रश्न आता है कि क्यों हमारे घरों से मातृभाषा का संस्कार धीरे-धीरे दूर होता जा रहा है ।

मातृभाषा बच्चे की पहली गुरु होती है, जो भावनाओं को सहजता से व्यक्त करने का माध्यम बनती है । घर में मातृभाषा के माध्यम से दादी-नानी की कहानियाँ, गीत और त्योहारों की चर्चाएँ होती हैं, जो सांस्कृतिक धागे बुनती हैं । भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने समाज, संस्कृति और इतिहास से जुड़ता है । आधुनिकता के नाम पर जब घरों में अंग्रेजी या हिंग्लिश हावी हो जाती है, तो बच्चे अपनी जड़ों से कट जाते हैं ।

भाषा न केवल संवाद का साधन है, बल्कि यह मानसिक विकास को भी बढ़ावा देती है ।

मातृभाषा के छूट जाने के कारण :-

1) अंग्रेजी का बढ़ता दबदबा

शिक्षा, रोजगार और सफलता की कुंजी के रूप में अंग्रेजी को देखने की प्रवृत्ति ने मातृभाषा की जगह ली है । माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे अंग्रेजी में दक्ष हों ताकि उन्हें बेहतर शिक्षा और रोजगार मिल सके । यह सोच गलत नहीं है, लेकिन जब अंग्रेजी सीखने के चक्कर में मातृभाषा को ही नजरअंदाज कर दिया जाता है, तब समस्या पैदा होती है ।

2) नई जीवनशैली और मीडिया का असर

टीवी, मोबाइल, इंटरनेट और सोशल मीडिया ने बच्चों की भाषा पर गहरा प्रभाव डाला है । कार्टून, फिल्में, वेब-सीरीज और ऑनलाइन गेम्स अक्सर अंग्रेजी या मिश्रित भाषा में होते हैं । व्यस्त जीवनशैली के कारण माता-पिता और बच्चों के बीच संवाद कम हो गया है । जो थोड़ा समय मिलता है, वह अक्सर अन्य कार्यों या डिजिटल उपकरणों में निकल जाता है । आधुनिक जीवनशैली में 'स्टेटस सिंबल' के रूप में अंग्रेजी को प्राथमिकता दी जाती है । बच्चों को 'स्मार्ट' दिखाने की होड़ में मातृभाषा को पीछे छोड़ दिया जाता है ।

3) सामाजिक दिखावा

सार्वजनिक स्थानों, पार्टियों या समारोहों में लोग अपनी भाषाई जड़ों को छिपाते हैं ताकि वे 'अप-मार्केट' या कुलीन वर्ग का हिस्सा दिख सकें । माता-पिता बच्चों को घर में भी मातृभाषा बोलने से टोकते हैं। उन्हें लगता है कि यदि बच्चा अपनी बोली बोलेगा, तो उसकी अंग्रेजी का उच्चारण खराब हो जाएगा या वह स्कूल में पिछड़ जाएगा।

4) शिक्षा प्रणाली का प्रभाव

भारत में लंबे समय तक शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी को प्राथमिकता दी गई । कई माता-पिता यह मानने लगे कि यदि बच्चा मातृभाषा में पढ़ेगा तो वह पीछे रह जाएगा । स्कूल में अंग्रेजी या हिन्दी के माध्यम से पढ़ाने के कारण, क्षेत्रीय भाषाएँ घर में भी कम हो रही हैं । आज की शिक्षा प्रणाली का मातृभाषा पर गहरा प्रभाव पड़ा है । अधिकांश स्कूलों और शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होता है । बच्चों को शुरू से ही अंग्रेजी में पढ़ाया जाता है और उसी भाषा में बोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है । इस कारण बच्चे अपनी पढ़ाई, होमवर्क और स्कूल से जुड़े अधिकांश काम अंग्रेजी में ही करते हैं । धीरे-धीरे वे उसी भाषा में सोचने और बातचीत करने लगते हैं । जब बच्चा दिन का अधिकतर समय स्कूल में अंग्रेजी के वातावरण में बिताता है, तो घर आने के बाद भी वह उसी भाषा का प्रयोग करने लगता है । भारतीय स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम ने घरेलू भाषा को दबाया है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में त्रिभाषा सूत्र को सम्मिलित किया तो गया है, लेकिन अमल में कमजोर है । कश्मीरी जैसी भाषाओं को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया, पर घरेलू अभ्यास न होने से बेकार है । मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा से सीखना आसान होता है, लेकिन अभिभावक इससे कतराते हैं ।

5) छोटा परिवार

छोटा परिवार वह परिवार होता है जिसमें केवल माता-पिता और उनके बच्चे रहते हैं । इसमें दादा-दादी, चाचा-चाची या अन्य रिश्तेदार साथ नहीं रहते । आधुनिक समय में शहरों और महानगरों में ऐसे परिवारों की संख्या तेजी से बढ़ रही है । पहले संयुक्त परिवारों में दादा-दादी और बुजुर्ग बच्चों को कहानियाँ, लोकगीत और परंपरागत ज्ञान सुनाते थे । इन सबके माध्यम से बच्चों को मातृभाषा और संस्कार दोनों मिलते थे । लेकिन आज अधिकांश परिवार छोटे हो गए हैं और बुजुर्गों के साथ समय कम बिताया जाता है, जिससे भाषा का प्राकृतिक संस्कार कमजोर पड़ता है । माता-पिता अक्सर अपने काम में व्यस्त रहते हैं और बच्चों के साथ भाषा व संस्कृति से जुड़ी बातें साझा करने का समय कम मिलता है । इसके कारण बच्चों का अपनी मातृभाषा और पारंपरिक ज्ञान से संपर्क धीरे-धीरे कम होने लगता है ।

6) भिन्न भाषाओं वाले लोगों का विवाह

अंतर-भाषीय विवाह वह विवाह होता है जिसमें पति और पत्नी

अलग-अलग भाषाई पृष्ठभूमि से होते हैं, अर्थात उनकी मातृभाषाएँ अलग होती हैं। भारत जैसे बहुभाषी देश में यह स्थिति अक्सर देखने को मिलती है, जहाँ विभिन्न राज्यों और संस्कृतियों के लोग आपस में विवाह करते हैं। ऐसे परिवारों में सामान्यत: संवाद के लिए किसी तीसरी भाषा, जैसे हिन्दी या अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है, ताकि दोनों एक-दूसरे को आसानी से समझ सकें। इसके कारण कई बार बच्चों को किसी एक मातृभाषा का पूरा संस्कार नहीं मिल पाता। वे मिश्रित भाषा बोलने लगते हैं या किसी एक प्रमुख भाषा को ही अपनाते हैं।

7) बाहरी प्रवासन

जब लोग अपने क्षेत्र से बाहर जाकर किसी नए स्थान पर रहते हैं, तो वहाँ की भाषा और संस्कृति का प्रभाव उन पर पड़ने लगता है। ऐसे वातावरण में लोग स्थानीय या प्रचलित भाषा का अधिक प्रयोग करने लगते हैं, ताकि वे समाज में आसानी से घुल-मिल सकें। इस प्रक्रिया में कई बार अपनी मातृभाषा का प्रयोग कम होने लगता है। विशेष रूप से बच्चों पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे स्कूल और समाज में वही भाषा सीखते और बोलते हैं जो वहाँ प्रचलित होती है। इस प्रकार बाहरी प्रवासन भी एक कारण बन सकता है, जिससे धीरे-धीरे परिवारों में मातृभाषा के संस्कार कमजोर पड़ने लगते हैं।

मातृभाषा के संस्कार छूटने के परिणाम:-

1)भावनाओं में दूरी

मातृभाषा में भावनाएँ अधिक सहजता से व्यक्त होती हैं। प्रेम, सम्मान, आशीर्वाद और अपनापन उसी भाषा में सबसे गहराई से महसूस होता है जिसमें हम बचपन से पले-बढ़े हों। बच्चे मातृभाषा से कटने पर दादा-दादी या नानी की कहानियों से भावनात्मक जुड़ाव खो देते हैं। परिवारिक संवाद सतही हो जाता है, क्योंकि गहरी भावनाएँ भाषा की महीन बारीकियों से व्यक्त होती हैं। यह दूरी चिंता और उदासी बढ़ाता है, खासकर किशोरावस्था में जब पहचान खोजी जाती है। परिणामस्वरूप, बुजुर्ग अकेलापन महसूस करते हैं, परिवार टूटने लगता है। विदेशी भाषा में बातचीत कभी-कभी औपचारिक और कृत्रिम लग सकती है, जबकि मातृभाषा में संवाद आत्मीय होता है।

2) पहचान संकट

भाषा संस्कृति की आत्मा होती है। जब भाषा कमजोर होती है तो परंपराएँ, लोकगीत, कहावतें और लोककथाएँ भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगती हैं। मातृभाषा के बिना बच्चे अपनी सांस्कृतिक जड़ों से अनभिज्ञ रहते हैं। कश्मीरी या उर्दू परिवार में बड़ा होने वाला युवा अपनी लोककथाओं से कटा महसूस करता है। यदि आने वाली पीढ़ियाँ अपनी भाषा को नहीं समझेंगी तो वे अपनी सांस्कृतिक जड़ों से भी दूर हो जाएँगी।

3) पीढ़ियों के बीच दूरी

पहले के समय में परिवारों में बुजुर्गों और बच्चों के बीच गहरा संबंध होता था। दादा-दादी और नाना-नानी बच्चों को अपनी मातृभाषा में कहानियाँ, लोककथाएँ और जीवन के अनुभव सुनाते थे। इससे बच्चों को भाषा के साथ-साथ संस्कार और परंपराओं की समझ भी मिलती थी। लेकिन आज आधुनिक जीवनशैली, तकनीक और बदलते सामाजिक माहौल के कारण नई पीढ़ी की भाषा, सोच और रुचियाँ अलग होती जा रही हैं। कई बार बच्चे अपनी मातृभाषा में सहज नहीं होते, जबकि बुजुर्ग उसी भाषा में बातचीत करना पसंद करते हैं। इस कारण दोनों पीढ़ियों के बीच संवाद कम होने लगता है और भावनात्मक दूरी बढ़ सकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि परिवार में मातृभाषा और सांस्कृतिक मूल्यों को महत्त्व दिया जाए, ताकि विभिन्न पीढ़ियों के बीच समझ और संबंध मजबूत बने रहें।

4) दिमागी क्षमता में कमी

जब बच्चे अपनी मातृभाषा से दूर हो जाते हैं, तो उनकी स्वाभाविक समझ और सीखने की प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। मातृभाषा वह भाषा होती है जिसमें बच्चा सबसे पहले सोचता, समझता और अपनी भावनाएँ व्यक्त करता है। यदि प्रारंभिक शिक्षा और संवाद उसी भाषा में हो, तो बच्चे के मस्तिष्क का विकास अधिक प्रभावी ढंग से होता है। लेकिन जब बच्चा ऐसी भाषा में शिक्षा प्राप्त करता है जो उसकी मातृभाषा नहीं है, तो उसे कई बार विषयों को समझने में अधिक समय और प्रयास लगाना पड़ता है। इससे उसकी सीखने की प्रक्रिया धीमी हो सकती है और उसकी सोचने-समझने की क्षमता पर भी प्रभाव पड़ सकता है। मातृभाषा में सोचना सरल और गहरा होता है, लेकिन विदेशी भाषा थोपने से अवधारणाएँ अस्पष्ट रहती हैं। रचनात्मकता और समस्या-समाधान क्षमता प्रभावित होती है। बच्चों की एकाग्रता घटती है, पढ़ाई में संघर्ष बढ़ता है।

5) रिश्तों में संवाद की दूरी

अंतर-भाषीय विवाहों में यह तेज होता है, लेकिन एकसमान भाषा वाले घरों में भी हिंग्लिश से गहराई कम हो जाती है। बहसें सतही रहती हैं, समझौते कठिन। बच्चे माता-पिता से भावनात्मक दूरी बनाते हैं। नया दृष्टिकोण: व्लॉगिंग जैसी आदतें मातृभाषा को और पीछे धकेलती हैं। पहले के समय में परिवार के लोग एक साथ बैठकर बातचीत करते थे, अपने अनुभव साझा करते थे और बच्चों को अपनी मातृभाषा में समझाते थे। इससे परिवार के बीच गहरा संबंध बना रहता था और बच्चों को भाषा के साथ-साथ संस्कार भी मिलते थे। लेकिन आज की व्यस्त जीवनशैली, तकनीक का अधिक उपयोग और बदलती भाषा के कारण परिवार के सदस्यों के बीच संवाद कम होता जा रहा है। कई बार नई पीढ़ी और बुजुर्गों की भाषा अलग हो जाती है, जिससे वे एक-दूसरे को ठीक से समझ नहीं पाते।

6) समाज में सांस्कृतिक असंतुलन

मातृभाषा संस्कृति का महत्त्वपूर्ण आधार होती है। इसके माध्यम से ही लोककथाएँ, लोकगीत, कहावतें, रीति-रिवाज और सामाजिक मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं। जब मातृभाषा का प्रयोग कम होने लगता है, तो इन सांस्कृतिक तत्वों का भी प्रभाव कम

होने लगता है । परिणामस्वरूप समाज में अपनी संस्कृति और विदेशी संस्कृति के बीच संतुलन नहीं रह पाता । लोग अपनी परंपराओं से दूर होते जाते हैं और सांस्कृतिक पहचान कमजोर पड़ने लगती है । इसलिए समाज में सांस्कृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए मातृभाषा और उससे जुड़े संस्कारों को महत्त्व देना बहुत आवश्यक है ।

मातृभाषा के संस्कार को बचाने के उपाय

1) घर में मातृभाषा में बातचीत

घर में मातृभाषा में बातचीत करना मातृभाषा के संस्कार को बचाने का सबसे सरल और प्रभावी तरीका है । जब परिवार के सदस्य आपस में अपनी मातृभाषा में बात करते हैं, तो बच्चों को स्वाभाविक रूप से उसी भाषा को सीखने और समझने का अवसर मिलता है । बच्चे अपने परिवार के वातावरण से ही भाषा और व्यवहार सीखते हैं। यदि घर में माता-पिता, दादा-दादी और अन्य सदस्य मातृभाषा का प्रयोग करते हैं, तो बच्चे भी उसी भाषा में सहज हो जाते हैं । इससे उनकी बोलने, समझने और सोचने की क्षमता भी बेहतर होती है । इसके साथ ही मातृभाषा में बातचीत करने से परिवार के सदस्यों के बीच भावनात्मक संबंध भी मजबूत होते हैं । बच्चे अपनी भावनाएँ और विचार आसानी से व्यक्त कर पाते हैं और परिवार के संस्कारों को भी अच्छी तरह समझते हैं ।

2) शिक्षा में मातृभाषा का महत्त्व

शिक्षा में मातृभाषा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है । मातृभाषा वह भाषा होती है जिसे बच्चा बचपन से अपने परिवार और आसपास के वातावरण से सीखता है । इसलिए इस भाषा में वह आसानी से सोच सकता है, समझ सकता है और अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है । जब बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में दी जाती है, तो उन्हें पढ़ाई को समझने में अधिक कठिनाई नहीं होती । वे विषयों को जल्दी और गहराई से समझ पाते हैं । इससे उनकी सीखने की क्षमता, आत्मविश्वास और रचनात्मक सोच का विकास होता है । इसलिए शिक्षा में मातृभाषा को महत्त्व देना आवश्यक है, ताकि बच्चों का बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास संतुलित रूप से हो सके ।

3) तकनीक का सकारात्मक उपयोग

मातृभाषा में उपलब्ध डिजिटल सामग्री जैसे ई-बुक, कहानियाँ, कविताएँ, वीडियो और शैक्षिक कार्यक्रम बच्चों और युवाओं को अपनी भाषा से जोड़ सकते हैं । बच्चे मोबाइल या इंटरनेट के माध्यम से अपनी मातृभाषा में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और भाषा को बेहतर तरीके से सीख सकते हैं । इसके अलावा सोशल मीडिया पर मातृभाषा में लेख, विचार और सांस्कृतिक जानकारी साझा करने से भी भाषा का प्रचार-प्रसार होता है । यदि परिवार और शिक्षक बच्चों को तकनीक का उपयोग मातृभाषा सीखने और समझने के लिए प्रेरित करें, तो यह भाषा और संस्कार दोनों को सुरक्षित रखने में सहायक हो सकता है । इस प्रकार तकनीक का सकारात्मक उपयोग मातृभाषा को बचाने और उसे नई पीढ़ी तक पहुँचाने का एक प्रभावी माध्यम बन सकता है ।

4) बुजुर्गों के साथ समय बिताना

बुजुर्गों के साथ समय बिताना मातृभाषा और संस्कारों को सीखने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है । परिवार के दादा-दादी और नाना-नानी अपने अनुभवों, कहानियों, लोककथाओं और जीवन के मूल्यों को अक्सर मातृभाषा में ही साझा करते हैं । इन बातचीतों के माध्यम से बच्चों को भाषा के साथ-साथ संस्कृति और परंपराओं की भी जानकारी मिलती है । इसलिए परिवार में बच्चों को बुजुर्गों के साथ समय बिताने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि मातृभाषा के संस्कार और पारिवारिक मूल्य दोनों सुरक्षित रह सकें ।

5) मातृभाषा में लेखन को बढ़ावा देना

यदि बच्चों को छोटी उम्र से ही मातृभाषा में निबंध, कहानी, कविता या डायरी लिखने के लिए प्रेरित किया जाए, तो उनकी भाषा की पकड़ बेहतर होती है । इससे वे अपनी संस्कृति, परंपराओं और सामाजिक मूल्यों को भी अच्छी तरह समझ पाते हैं । इस प्रकार मातृभाषा में लेखन को बढ़ावा देना भाषा और उससे जुड़े संस्कारों को सुरक्षित रखने का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है ।

निष्कर्ष:-

मातृभाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं है, बल्कि यह हमारी संस्कृति, परंपरा और संस्कारों की आधारशिला है । जब घरों में मातृभाषा का प्रयोग कम होने लगता है, तो उससे जुड़े मूल्य, परंपराएँ और सांस्कृतिक पहचान भी धीरे-धीरे कमजोर होने लगती हैं । आधुनिकता और वैश्वीकरण के इस दौर में नई भाषाएँ सीखना आवश्यक है, लेकिन इसके साथ अपनी मातृभाषा को भी सम्मान और महत्त्व देना उतना ही जरूरी है । परिवार, समाज और शिक्षा व्यवस्था को मिलकर यह प्रयास करना चाहिए कि घरों में मातृभाषा का प्रयोग बढ़े और बच्चों को बचपन से ही अपनी भाषा और संस्कृति से जोड़ा जाए । जब परिवारों में मातृभाषा की मिठास और अपनापन बना रहेगा, तभी आने वाली पीढ़ियाँ अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी रहेंगी । इसलिए आवश्यक है कि हम अपनी मातृभाषा को केवल भाषा न समझें, बल्कि उसे अपनी पहचान, संस्कार और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सहेज कर रखें ।

-डॉ. गौरव कुमार
सहायक आचार्य, मीडिया एवं क्रिएटिव आर्ट्स विभाग
महर्षि मारकंडेश्वर डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी, मुलाना, अंबाला

-मीर आसिफ अली, मीडिया छात्र
महर्षि मारकंडेश्वर डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी मुलाना अंबाला

युवा मत

लोकगीतों में अपने समय का स्वर

लोकगीतों में अपने समय का पूरा समाज बसता है, या यूं कहा जाए कि लोकगीत अपने समय की प्रतिध्वनि है, जिसकी गूंज लिखित साहित्य से लेकर आम जनमानस की बोलचाल में गूंजती है। अब परिदृश्य बदल रहा है, लोकगीतों की जो परंपरा मेरी नानी से मेरी माँ तक पहुँची, वह मेरी बहन तक आते-आते अब लुप्त होती नजर आती है । इसके कारण पर विचार आवश्यक है । शायद एकल परिवार, आधुनिकता की ओर भागता हुआ समाज, मशीनीकरण, इत्यादि इसके मुख्य कारण हो सकते हैं, परंतु लोक कलाकारों की उपेक्षा के साथ ही श्रेष्ठता और शिष्टता की ओढ़नी भी इसका एक बड़ा कारण है । यह जानना भी महत्त्वपूर्ण है कि लोकगीतों से किसी समाज के समय या उसके इतिहास को जाना जा सकता है । लोकगीत समाज के जीवंत दस्तावेज होते हैं । नामवर जी इसी बात को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि, "हमारे यहाँ लोक कथाओं, लोक-गीतों और लोक-विवेकों का अध्ययन 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में संभवत: सबसे पहले इसाई मिशनरियों ने आरम्भ किया । ये मिशनरी यूरोप के उन देशों से आए थे, जहाँ औद्योगिक उत्थान, मध्य-वर्ग का उदय तथा राष्ट्रीयता की जाग्रति बहुत पहले हो चुकी थी और इसीलिए उनके यहाँ लोक-साहित्य का अध्ययन बहुत पहले आरम्भ हो चुका था । हमारे देश में धर्म-प्रचार करते समय उन्होंने अपना क्षेत्र पिछड़ी हुई आदिम जातियों के बीच बनाया । धर्म-प्रचार के लिए आवश्यक था कि उन जातियों की भाषा और संस्कृति से परिचय हो, इसलिए उन्होंने उन जातियों की भाषा, साहित्य तथा प्रथाओं का अध्ययन किया ।"

यह बताना तो कठिन है कि लोकगीतों का आविर्भाव कब हुआ, परंतु अनगढ़ और अनपढ़ लोगों ने जब समाज बनाया होगा तो उस समाज के प्रेम, वेदना, दुख-सुख आदि मनोभावों की रागात्मक और रसात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति जब कंठ से फुटी होगी, तो वह अवश्य ही लोकगीत रहे होंगे । जन्म से लेकर मृत्यु तक जब-जब मनुष्य को अपनी अभिव्यक्ति को माध्यम देने की आवश्यकता पड़ी, तो यही लोकगीत प्रतिध्वनि की तरह समाज में गूंजे और अपने समय और इतिहास को अपने अंदर समाहित कर लिया, साथ ही समय-समय पर बदलाव के साथ अपने समय की अभिव्यक्ति का माध्यम बने । 1857 की क्रांति से पहले साम्राज्यवाद के प्रति विद्रोह के स्वर लोक कंठ से फूट चुके थे । यह गीत देखिए-

"देश में अँगरेज आयो, काँई काँई लायो रे ।
फूट नांकी भायां में, बेगार लायो रे ।
काली टोपी रो, काली टोपी रे,
देश में ढूत्यारो आयो रे, भूरिया मूँडालो"

यह दौर भारतीय स्वाधीनता संग्राम के साथ-साथ भारतीय नवजागरण का भी है । इस नवाचार का प्रभाव लोक से कैसे अछूता रहता । बाल-विवाह उस दौर की बड़ी सामाजिक रूढ़ियों में से एक था । जिस समाज ने इसे जन्म दिया उसी समाज में इस प्रथा के तिरस्कार का भाव देखने को मिलता है । इसी नवाचार का प्रभाव इस भावात्मक गीत में देखिए -

ध्रुव शिवहरे

"कोठा ऊपर कोठरी हलवैया क दुकान ।
हाथ से लड्डू छूट गइल हलवैया मारे शान ।
किरिया ले ला राजा अबहीं नादान ।"

बाल-विवाह के अतिरिक्त उस समय की अनेकों सामाजिक रूढ़ियों और समस्याओं को लोकगीतों में देखा जा सकता है । 1920-30 ई. तक आते-आते गाँधी तारणहार के रूप में आते हैं, तब स्वाधीनता आंदोलन अपने चरम पर था । उस दौर में लोक में कैसे गाँधी के विचारों का प्रभाव से अछूता रह पाता । यह भोजपुरी लोकगीत देखिए-

"मोरे चरखा के टूटे न तार,
चरखवा चालू रहे,
मोती, जवाहर बने बाराती
दुल्हिन बनी सरकार,
चरखवा चालू रहे...."

इस गीत में पति बाहर कमाने जाता है और पत्नी को चरखा देकर जाता है, जहाँ चरखा स्वदेशी के प्रतीक के रूप में सामने आता है । यह गीत विवाह-गीत के रूप में बहुत प्रसिद्ध हुआ और बिहार के आंचलिक परिवेश को भी समाहित करता है ।

इस बात में कोई दो राय नहीं कि भारतीय इतिहास के चरित्र में लोक बसता है, परंतु यह चरित्र, समय और परिस्थितियों के हिसाब से बदलता रहता है । इस बदलाव का असर लोकमानस से अछूता नहीं रह सकता है । आजादी से पहले जहाँ लोकगीतों में राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक रूढ़ियों के बदलाव की मांग थी, तो वहीं आजादी के बाद आर्थिक विषमता, राजनीतिक चेतना, सामाजिक समरसता और स्त्री सशक्तीकरण आदि के स्वर लोकगीतों में मिलते हैं । औद्योगीकरण, पंचवर्षीय योजना की शुरुआत के बावजूद समाज का एक बड़ा वर्ग आर्थिक तंगी झेल रहा था । एक गीत देखिए -

"केकर जोतल, केकर बोअल, के काटेला खेत?
केकर माई पुआ पकावे, केकर चीकन पेट?"

लोकतांत्रिक व्यवस्था के साथ महिलाओं के जीवन में बड़े बदलाव आए और उन्होंने अपने आपको पूर्व की अपेक्षाकृत अधिक सशक्त पाया। इसकी एक बानगी इस गीत में देखें –

"मौरे जादू अइसे नैनन मैं अस चंचल जइसे
दुरपन गुंडा डरिहैं देख मोरी कटरिया,
बदरिया धेर आई गोरिया
मैं तो खेलन जइहाँ सावन माँ कजरिया"

इतिहास के अतिरिक्त लोकगीत, लोक संस्कृति और सांस्कृतिक विरासत का परिचायक भी है, साथ ही उसमें अपने आंचलिक परिवेश की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है। यही कारण है कि भारत की विविध संस्कृति में भिन्न-भिन्न लोकगीत मिलते हैं। असम में 'बोहाग बिहू' या श्रोंगाली बिहूश फसल कटाई और नए साल के आगमन का प्रतीक है, तो वहीं छत्तीसगढ़ में सुआ गीत और सैला, केरल में ओणम गीत (ओणम) आदि गीत फसल कटाई के दौरान गाए जाते है। यह लोकगीत केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक खेती के अनुभव और मौसम के ज्ञान को पहुँचाने का माध्यम भी बनते हैं। बुंदेली का ये गीत देखिए–

पहले आँधी बैहर आई,
दूजे बादर देत देखाई।
तीजे कठिन अँधेरी छाई,
उठी घटा घनघोर, रस
असड़ा खेती करें किसान,
बोई तिली बिनौला धान।
जुण्डी हो गई दो दो पान,
सखियाँ करें मंगलाचार, रस की ॥

इसी प्रकार विभिन्न त्योहारों के लिए भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अनेक प्रकार के लोकगीत प्रचलित है। उत्तर प्रदेश (ब्रज) जहाँ 'होरी' और 'रसिया' गाए जाते हैं, तो दूसरी ओर बिहार में फाग और छठ के गीत आदि गाए जाते है।

आधुनिकता के इस दौर में जहाँ समाज बहुत तेजी से बदल रहा है, वहाँ भाषा का रूप भी बहुत तेजी से बदला है। कामता प्रसाद गुरु जी कहते है कि, "भाषा स्थिर नहीं रहती, उसमें सदा परिवर्तन हुआ करते हैं।" तो फिर लोकगीत इस परिवर्तन से कैसे छूट सकते हैं। पं० रामनरेष त्रिपाठी जी इस संबन्ध में लिखते हैं– षकितने ही गीतों ने देश काल के अनुसार भाषा का चोला तो बदल डाला, पर अपने मूल स्वरूप को कायम रखा। बहुत से गीतों की आयु हजारों वर्ष की होगी। वे थोड़े फेर-फार के साथ समाज में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं।" इसका सबसे अच्छा उदाहरण परमाल रासो का आल्हा खंड है, जिसमें आदिकाल से अब तक मूल रूप से अनेकों परिवर्तन देखे जा सकते है। इसी प्रकार मिथिला के नचारी गीत, महाकवि विद्यापति की मूल नचारी गीत बहुत ही शुद्ध और साहित्यिक मैथिली (अवहट्ट मिश्रित) में थी। वर्तमान में जो नाचरी गाई जाती है, उसमें शब्दों को इतना सरल कर दिया गया है कि वह आधुनिक हिन्दी या भोजपुरी के प्रभाव में आ गई है। समय की बहती इस निरंतर प्रवाहित धारा में लोकगीतों के प्रतीक, बिम्ब और भाषा के रूप में परिवर्तन उसके विकास का स्वाभाविक प्रतिरूप है।

स्पष्ट है कि वैदिककाल में गाथा और प्रकारान्तर ग्रामगीत या लोकगीत की परंपरा जनमानस के विकास की कहानी कहती है, जिसने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ-साथ सांस्कृतिक विरासत के उत्प्रेरक और परिचायक के रूप में काम किया। इसकी धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहे, इसके लिए आवश्यक है कि हम अपने लोक की ओर वापस मुड़ें, अपनी मातृभाषा को जीवंत रखें; जिससे हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को जीवित रख पाएंगे, जिसमें लोकगीत एक महत्त्वपूर्ण घटक है।

-ध्रुव शिवहरे
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

पं. दीनदयाल उपाध्याय

इस बात का ध्यान सदैव रखना चाहिए कि पहले अंग्रेजी को यहाँ से हटाना है। अंग्रेजी चली गई तो उसका स्थान केवल हिन्दी नहीं, सारी प्रादेशिक भाषाएँ लेंगी। अंग्रेजी के यहाँ रहते देश की अन्य भाषाएँ अपना विकास नहीं कर पाएंगी... यह भी ध्यान रखना होगा कि अंग्रेजी को तो यहाँ से जाना ही चाहिए, क्योंकि यह हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रश्न है।

युवा मत

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी: ऐतिहासिक यात्रा और वर्तमान स्थिति

आकांक्षा मिश्रा

संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations) आधुनिक विश्व का सबसे प्रमुख बहुपक्षीय मंच है, जिसकी स्थापना 24 अक्टूबर, 1945 को द्वितीय विश्व युद्ध की भयावहता के बाद शांति, सुरक्षा, विकास और मानवाधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से की गई थी । इस संगठन की छह आधिकारिक भाषाएँ हैं- अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी, चीनी और अरबी । इन भाषाओं में सभी आधिकारिक दस्तावेज, बहसें और संचार होते हैं । हिन्दी, जो विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक है और लगभग 60 करोड़ से अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है, अभी तक पूर्ण आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त नहीं कर पाई है । फिर भी, स्वतंत्र भारत की सांस्कृतिक आत्मविश्वासपूर्ण यात्रा के रूप में हिन्दी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में धीरे-धीरे अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। यह यात्रा मात्र भाषाई प्रयास नहीं, बल्कि भारत की सॉफ्ट पावर, बहुभाषिकता के सिद्धांत और वैश्विक समावेशिता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है ।

हिन्दी की संयुक्त राष्ट्र संघ यात्रा की शुरुआत स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में हुई, जब भारत ने अपनी राजभाषा को अंतरराष्ट्रीय पटल पर स्थापित करने का संकल्प लिया। 1977 का वर्ष इस यात्रा का सबसे महत्त्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। 4 अक्टूबर, 1977 को तत्कालीन विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र महासभा (UNGA) के 32वें सत्र में पहली बार हिन्दी में भाषण दिया । यह ऐतिहासिक क्षण था, क्योंकि उससे पहले भारतीय प्रतिनिधि आमतौर पर अंग्रेजी में ही बोलते थे । वाजपेयी जी के इस भाषण ने न केवल हिन्दी को वैश्विक मंच पर गूंजने का अवसर दिया, बल्कि भारत की सांस्कृतिक स्वाधीनता और आत्मविश्वास को भी विश्व के सामने प्रदर्शित किया । भाषण में उन्होंने शांति, अहिंसा, गुटनिरपेक्षता और वैश्विक समानता जैसे विषयों पर जोर दिया, जो भारतीय दर्शन की प्रतिध्वनि थे । इस भाषण को आज भी हिन्दी प्रेमियों और कूटनीतिज्ञों द्वारा याद किया जाता है, क्योंकि यह हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र महासभा जैसे उच्चतम मंच पर ले जाने का प्रथम सफल प्रयास था । वाजपेयी जी के बाद भारतीय नेताओं और प्रतिनिधियों ने समय-समय पर हिन्दी का उपयोग जारी रखा । प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी सहित कई प्रमुख व्यक्तियों ने संयुक्त राष्ट्र महासभा और संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य मंचों पर हिन्दी में संबोधन दिया, जिससे हिन्दी की वैश्विक छवि और मजबूत हुई । इन प्रयासों का उद्देश्य केवल भाषा का प्रचार नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक विरासत को विश्व पटल पर स्थापित करना था ।

हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ में बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने विभिन्न स्तरों पर कूटनीतिक और वित्तीय प्रयास किए । इन प्रयासों का परिणाम 2018 में Hindi@UN परियोजना के रूप में सामने आया। Hindi@UN परियोजना भारत सरकार और संयुक्त राष्ट्र संघ के ग्लोबल कम्युनिकेशंस विभाग (UNDGC) के बीच एक महत्त्वपूर्ण समझौता है । 2018 में शुरू हुई इस परियोजना का प्रारंभिक MoU दो वर्षों के लिए था, जिसे 2019 में पाँच वर्षों तक बढ़ाया गया (मार्च 2025 तक)। फरवरी 2025 में इस परियोजना को फिर से पाँच वर्षों (1 अप्रैल, 2025 से 31 मार्च, 2030 तक) के लिए नवीनीकृत किया गया । इस MoU पर भारत के स्थायी प्रतिनिधि राजदूत पी. हरिश और न्छक्ळब की अंडर सेक्रेटरी जनरल मेलिसा फ्लेमिंग ने हस्ताक्षर किए । भारत सरकार ने प्रति वर्ष 1.5 मिलियन अमेरिकी डॉलर (लगभग 12.5 करोड़ रुपये) का योगदान देने का वादा किया है । अब तक भारत इस परियोजना पर कुल 6.8 मिलियन डॉलर खर्च कर चुका है । यह परियोजना यू.एन. सिस्टम में हिन्दी की मात्रा और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए शुरू की गई थी । Hindi@UN परियोजना की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं । इसके अंतर्गत यू.एन. न्यूज की हिन्दी वेबसाइट शुरू की गई, जो संयुक्त राष्ट्र संघ की गतिविधियों, समाचारों और रिपोर्टों को हिन्दी में उपलब्ध कराती है । संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स X (पूर्व ट्विटर), फेसबुक और इंस्टाग्राम पर नियमित रूप से हिन्दी सामग्री जारी की जाती है । यू.एन. रेडियो के साप्ताहिक हिन्दी बुलेटिन शुरू किए गए, जो विश्व भर के हिन्दी श्रोताओं तक संयुक्त राष्ट्र संघ की आवाज पहुँचाते हैं । महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों, संदेशों और अभियानों का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध कराया जाता है । यह परियोजना संयुक्त राष्ट्र संघ की बहुभाषिकता एजेंडे को व्यावहारिक रूप देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है ।

2022 में बहुभाषिकता (Multilingualism) पर भारत-प्रायोजित प्रस्ताव न्छळ। में पारित हुआ, जिसमें पहली बार हिन्दी का स्पष्ट उल्लेख किया गया । प्रस्ताव में संयुक्त राष्ट्र संघ को प्रोत्साहित किया गया कि वह आधिकारिक भाषाओं के अलावा हिन्दी, बंगाली, उर्दू जैसी गैर-आधिकारिक भाषाओं में भी महत्त्वपूर्ण संदेश और संचार जारी करे । इस प्रस्ताव को 80 से अधिक देशों ने सह-प्रायोजित किया था । 2024 और 2025 के प्रस्तावों में भी हिन्दी का उल्लेख जारी रहा । ये प्रस्ताव हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थायी जगह दिलाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम हैं, हालांकि पूर्ण आधिकारिक दर्जे के लिए अभी और प्रयासों की जरूरत है । 2025-2026 का काल हिन्दी की संयुक्त राष्ट्र संघ की यात्रा में एक और ऐतिहासिक उपलब्धि का साक्षी बना । दिसंबर 2025 में संयुक्त

राष्ट्र संघ के महासचिव एंतोनियो गुतारेस ने 2026 के न्यू ईयर संदेश को पहली बार हिन्दी में भी जारी किया । यह संयुक्त राष्ट्र संघ के इतिहास में पहली बार हुआ, जब महासचिव का न्यू ईयर संदेश हिन्दी में उपलब्ध कराया गया । संदेश अंग्रेजी के साथ हिन्दी टेक्स्ट और वीडियो में हिन्दी सबटाइटल्स के साथ जारी हुआ । गुतारेस ने संदेश में विश्व नेताओं से अपील की कि वे विकास पर अधिक और सैन्य खर्च पर कम ध्यान दें, शांति और समावेशिता को प्राथमिकता दें। इस पहल को भारत की निरंतर कूटनीति का परिणाम माना गया ।

हिन्दी दिवस (14 सितंबर) और विश्व हिन्दी दिवस (10 जनवरी) पर संयुक्त राष्ट्र संघ में नियमित कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं । भारतीय स्थायी मिशन (PMI to UN) इन अवसरों पर हिन्दी कार्यशालाएं, सांस्कृतिक कार्यक्रम और चर्चाएं आयोजित करता है । संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न विभागों में हिन्दी अनुवादकों की नियुक्ति और क्षमता निर्माण पर भी काम हो रहा है । ये सभी प्रयास हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ के दैनिक संचार का हिस्सा बनाने की दिशा में हैं । हिन्दी को आधिकारिक भाषा बनाने की चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं । संयुक्त राष्ट्र महासभा में किसी नई भाषा को आधिकारिक दर्जा देने के लिए दो-तिहाई बहुमत (193 सदस्य देशों में से कम-से-कम 129 देशों का समर्थन) आवश्यक है । यह प्रक्रिया जटिल और लंबी है । सबसे बड़ी बाधा वित्तीय बोझ है । नई भाषा शामिल करने पर यू.एन. को दस्तावेज अनुवाद, रीयल-टाइम व्याख्या, वेबसाइट अपडेट और स्टाफ प्रशिक्षण के लिए सालाना करोड़ों डॉलर का अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है । सभी सदस्य देशों को यह खर्च वहन करना होता है । भारत सरकार पूरा खर्च अकेले उठाने को तैयार है, लेकिन यू.एन. के नियम इसे सीधे अनुमति नहीं देते । अरबी भाषा को 1973 में आधिकारिक दर्जा मिलने में भी इसी तरह के प्रयास लगे थे । अन्य भाषाओं की माँग भी एक चुनौती है । पुर्तगाली, स्वाहिली, बंगाली आदि भाषाएँ भी अपना दर्जा चाहती हैं । यदि हिन्दी शामिल हुई तो अन्य भाषाओं के लिए माँग बढ़ सकती है। अंग्रेजी का प्रभुत्व यू.एन. में इतना मजबूत है कि अधिकांश काम उसी में होते हैं । इसके अलावा, यू.एन. के आंतरिक तंत्र में हिन्दी के लिए पूर्ण मानकीकरण, शब्दावली विकास और प्रशिक्षित अनुवादकों की उपलब्धता सुनिश्चित करनी होगी । फिर भी, भारत की कूटनीति इन चुनौतियों का सामना कर रही है। राजभाषा विभाग, विदेश मंत्रालय और यू.एन. मिशन के समन्वय से निरंतर लॉबिंग हो रही है । हिन्दी-प्रेमी देशों- मॉरीशस, फिजी, नेपाल, सूरीनाम, गुयाना आदि के साथ गठबंधन मजबूत किया जा रहा है । ए.आई. आधारित अनुवाद प्रौद्योगिकी का उपयोग बढ़ाने से खर्च कम करने की संभावना है । 2030 तक Hindi@UN परियोजना के विस्तार से हिन्दी की उपस्थिति और बढ़ेगी ।

वर्तमान में हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संघ की गैर-आधिकारिक लेकिन महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में उभर रही है । न्छ छमू, सोशल मीडिया और कुछ रिपोर्ट्स में हिन्दी उपलब्ध है । भारतीय प्रतिनिधि हिन्दी में बोलते हैं और उनका भाषण अनुवादित होता है । महासचिव के हिन्दी संदेश ने एक नया मानक स्थापित किया है । हालांकि पूर्ण आधिकारिक दर्जा अभी दूर है, लेकिन प्रगति निरंतर और सकारात्मक है । हिन्दी की इस यात्रा का व्यापक महत्त्व है । यह 140 करोड़ भारतीयों की सामूहिक आवाज को विश्व मंच पर प्रतिनिधित्व देने का माध्यम है । बहुभाषिकता संयुक्त राष्ट्र संघ के मूल सिद्धांतों में से एक है, जो समावेशिता और समानता पर आधारित है । हिन्दी को मजबूत करने से संयुक्त राष्ट्र संघ अधिक लोकतांत्रिक और विश्व जनता के करीब बनेगा । सांस्कृतिक रूप से यह भारतीय सभ्यता की वैश्विक पहुँच का प्रतीक है ।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी की यात्रा 1977 के वाजपेयी भाषण से शुरू होकर 2025-26 के महासचिव के हिन्दी संदेश तक पहुँच चुकी है । यह यात्रा चुनौतियों से भरी है, लेकिन भारत की दृढ़ इच्छाशक्ति और कूटनीतिक कौशल से आगे बढ़ रही है । जब हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्य हॉल में पूर्ण अधिकार के साथ बोलेगी, तो वह मात्र भाषा नहीं, बल्कि शांति, समावेश और सांस्कृतिक विविधता का प्रतीक बनेगी। 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' जैसे पत्रिकाएं इस दिशा में जागरूकता फैलाकर, शोध को प्रोत्साहित करके और युवा पीढ़ी को जोड़कर महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं ।

-आकांक्षा मिश्रा
शोध छात्रा, पश्चिमी इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

हिन्दी का श्रृंगार राष्ट्र के सभी भागों के लोगों ने किया है, वह हमारी राष्ट्रभाषा है।

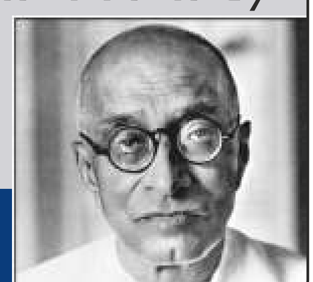

-चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

लोक से नागर तक : हिन्दी साहित्य की निर्मिति में लोकसाहित्य की भूमिका

जब हम लोकसाहित्य की बात करते हैं तब हम उसे अनागर जन का साहित्य मान लेते हैं, जबकि लोक-साहित्य शब्द अपने में विस्तृत लोक का भाव समेटे हुए हैं, जिसमें 'नागर' भी समा जाते हैं । नागर साहित्य की अपेक्षा लोक-साहित्य की अभिव्यक्ति अधिक सहज, स्वाभाविक, प्रमाणिक और विश्वसनीय होती है । उसमें लोक की अकुंठित भावनाएँ और उसके सपने लुके-छुपे होते हैं । लोकसाहित्य वस्तुत: सामान्यजन के मनोभावों और विचारों का अकूत भंडार होता है, जिसमें से आवश्यकता अनुसार सामग्री लेकर नागर साहित्य अपना आकार और सीमाएँ प्राप्त करता है । नागर साहित्य की विषय और अभिव्यक्ति के लिए लोक-साहित्य से ही ऊर्जा मिलती है । मोटे तौर पर अनवरत प्रवृत्तियाँ लोकसाहित्य की दृष्टि क्षमताओं और शक्ति को सुनिश्चित करती हैं । जब तक नागर साहित्य लोकसाहित्य से जुड़ा रहता है तब तक वह जीवित रहता है और जब वह उससे दूर हो जाता है तब वह लोक से भी दूर चला जाता है ।

जहाँ तक हिन्दी साहित्य का प्रश्न है, इसका लोकजीवन और उसका साहित्य से शताब्दियों पुराना रिश्ता रहा है । साहित्य का आधार यथार्थ का कल्पना से समन्वय है । इसके रूपों की चर्चा करने के क्रम में मौखिक/लोक साहित्य की बात आती है । ('भाषा लोक, अग्रवाल मुकेश, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या-314-15) नागर और लोक साहित्य के बीच का यह रिश्ता पहले स्वाधीनता-संग्राम से पहले, सन् 1800 से खंडित होना प्रारंभ हुआ, जो आज और अधिक विखंडित होता चला जा रहा है । लोकसाहित्य और हिन्दी साहित्य का यह परस्पर संबंध तब और अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जब हम हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन, रीतिकालीन और उसके बाद आनेवाले शताब्दियों में भारत में आए विदेशी आक्रांताओं का अध्ययन करें। आक्रमणकारियों, धार्मिक नेताओं और साहित्यकारों ने इसको उतना नहीं तोड़ा, जितना सन् 1800 के बाद तेजी से विकसित की गई खड़ी बोली और उसके साहित्य ने तोड़ा । इस मामले में कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज की ऐतिहासिक भूमिका रही ।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने समग्र हिन्दी साहित्य को भाषागत, विषयगत और प्रवृतिगत विशेषताओं के आधार पर आदि, मध्य और आधुनिक कालों में विभाजित किया है । आदिकाल के अंतर्गत हम ऐसे साहित्य की चर्चा पाते हैं जो या तो भारतीय इतिहास की दृष्टि से मध्यकालीन राजाओं और सामंतों के जीवन पर आधारित है या लौकिक और आध्यात्मिक रंग लिए हुए हैं । भारतीय इतिहास के मध्यकाल का आरंभ ईरानी, अफगानी, तुर्की और मंगोल जातियों के भारत पर आक्रमणों के साथ माना गया है । लूट-मार और व्यापार की मंशा लिए हुए ये आक्रमणकारियों के समूह के साथ भारत आए थे, लेकिन ये शासक के रूप में अपनी सभ्यता को विस्तार देने लगे । उनकी लुटेरी और विस्तारवादी नीयत के कारण भारतीय राजाओं और सामंतों को अपनी तलवार उठाकर उनका प्रतिरोध करना पड़ा था । उनमें युद्ध का उन्माद जगाने के लिए उनके आश्रित कवियों को जो चारण और भाट कहलाते थे, उनके विविध युद्ध प्रसंगों पर अपनी कलम उठाकर वीर काव्य लिखने पड़े थे । इन काव्यों को रासो, बात, ख्याल आदि नामों से जाना जाता है । अब समस्या यह उठती है कि इन काव्यों को दरवारी कवियों के द्वारा लिखे जाने के कारण इसे नागर काव्य माना जाए या लोक काव्य । ये तो तय है कि पीढ़ी स्मृतिशून्य न हो जाए, इसके लिए वे पुरानी स्मृतियाँ लोक आख्यान एवं लोककाव्य में हमें उपलब्ध कराए जाते हैं। (भारतीय लोक और स्त्री मन, पृष्ठ-9, स्वराज। ISBN:978-93-88891-39-4) नि:संदेह लोक काव्य उन तितलियों के मानिंद है जिसकी स्वर लहरी बतलाती है- पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं । किसी काव्य को 'लोककाव्य' की संज्ञा तभी मिल सकती है जब उसकी जड़ें लोक में हो । उसके पात्र लोकजीवन से लिए गए हों । इसकी कथनभंगिमा लोकशैली में हो और विषय लोकप्रिय हो ।

अधिकांश आदिकालीन वीर काव्यों की रचना राजदरबारों अथवा कवि भवनों में हुई थी । इसका वाचन राजदरबार से लेकर युद्धक्षेत्र तक और नगर से लेकर गाँवो तक किया जाता था । इन वीर काव्यों की रचना 12 वीं शताब्दी में शुरू हुई, किन्तु लोक के बीच इसका गायन 19 वीं शताब्दी तक चलता रहा । आरंभ में जो रासो काव्य अपभ्रंश में लिखे गए वे 7-800 वर्षों की गायकी के फलस्वरूप गायकों की परिवर्तित भाषा में ढलते गए । मौखिक परंपरा के कारण इन कवियों की भाषा अवहठ से लेकर डिंगल अर्थात राजस्थानी और डिंगल से लेकर पिंगल अर्थात ब्रजभाषा का प्रभाव ग्रहण करती रही, जो इनकी लोकप्रियता का कारण बना । यहाँ तक कि कृष्ण और राम की आराधना मुसलमान कवियों ने ब्रज और अवधी रूपी लोकभाषा के माध्यम से की । (हिन्दी भाषा विकास एवं व्यावहारिक प्रायोजन, डॉ मुकेश अग्रवाल, के. एल. पचौरी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-15, संस्करण-2010)

लोक में गाए जाने के कारण इनको साहित्य का स्वरूप मिल गया । इस बात का उदाहरण उत्तर प्रदेश के चौपालों पर गाए जाने वाले आल्हा-ऊदल को सुनकर कोई नहीं कह सकता कि यह कभी राजस्थानी या बुंदेलखंडी में लिखा गया हो । कथित विस्तारित संस्कृति के कारण भारतीयों और उनके समाज के बीच के विविध युद्ध-संघर्षों, रक्त, हत्या, अपमान, प्रेम और अन्य प्रकार से लोकजीवन की गाथाओं ने लोक काव्यों की परंपरा को प्रभावशाली

बनाया । वीरकाव्यों में उन नायकों को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ, जो आत्मसम्मान, गौरक्षा, निडरता तथा प्रजाहित की रक्षा के लिए अपने प्राणों को बलिवेदी पर चढ़ा देने में संकोच नहीं करते थे। पृथ्वीराज चौहान, हम्मीर देव, गोरा-बादल, महाराणा प्रताप, दुर्गादास, छत्रसाल बुंदेला तथा गुरु गोविंद सिंह जैसे वीर ऐतिहासिक पुरुष थे। लोकगीतों में इनका और भी अधिक सम्मान था तथा उनके जीवन पर अनेक छोटे-बड़े आख्यान रचे गए । इन वीरों के प्रभावशाली कार्यों का लोकमानस पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे लोकगीतों के नायक बन गए। कई दूरदर्शी दरबारी कवियों ने भी इस लोकप्रियता को समझते हुए अपने काव्य में लोकगीतों की शैली का सहारा लिया। दरबारी तथा गैर-दरबारी साहित्य दोनों में पृथ्वीराज चौहान, हम्मीर देव, महाराणा प्रताप, दुर्गादास, छत्रसाल बुंदेला और गुरु गोविंद सिंह जैसे वीरों के चरित तथा उनके वंशों का बार-बार वर्णन मिलता है । इससे यह स्पष्ट समझ आता है कि मध्यकाल में दिल्ली के शासकों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाने वाले योद्धाओं के पीछे हिंदू-मानसिकता का गहरा प्रभाव था। उस युग के लोकसाहित्य तथा दरबारी साहित्य दोनों के केंद्र में वीरता, आत्मसम्मान, गौरवशाली संघर्ष और प्राणों की आहुति देने का भाव प्रमुख था। इन साहित्यकारों ने लोकजीवन से प्रेरणा लेकर अपने लेखन में वे भावनाएँ समाहित कीं, जो सीधे जनता से जुड़ी हुई थीं ।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारतीय लोक और साहित्य में वीरता और संघर्ष की गाथाएँ सदैव से प्रचलित रही हैं । इसका प्रभाव आज भी लोकगीतों और काव्य पर देखा जा सकता है । वीरता, आत्मसम्मान, गौरव की भावनाएँ भारतीय साहित्य का महत्त्वपूर्ण हिस्सा रही हैं और इसे संजोने और प्रकट करने में लोक साहित्य का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। वीरता, आत्मसम्मान, गौरवशाली संघर्ष की ये गाथाएँ भारतीय साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग रहे हैं । यह मध्यकालीन समय में भी स्पष्ट देखा जा सकता है, जब लोक साहित्य और दरबारी साहित्य के बीच का अंतर धीरे-धीरे मिटता चला गया । दरबारी साहित्य में भी लोक की ध्वनियाँ और उसकी सरलता देखने को मिलने लगी । यही कारण है कि लोक साहित्य को सदैव एक महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में देखा गया है, जिसने हिन्दी साहित्य को पोषित किया है ।

ऐतिहासिक रूप से देखा जाए, तो अनेक लोकनायकों के नाम उनके द्वारा किए गए कार्यों के कारण अमर हो गए । उनमें कुछ नाम ऐसे भी हैं जिनकी वीरता और बलिदान ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया । उदाहरण के तौर पर पृथ्वीराज चौहान, हम्मीर देव, महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौड़, गुरु गोविंद सिंह इत्यादि । इन सभी वीर नायकों के जीवन ने हिन्दी साहित्य को गहराई प्रदान की और उनके संघर्ष ने साहित्यकारों को सृजन के लिए प्रेरित किया । लोक साहित्य में इन वीर नायकों की गाथाएँ आज भी जीवित हैं और उन्हें सदियों से गाया जाता रहा है । वीरों के सम्मान में लिखी गई ये गाथाएँ लोक में गहरी पैठ बनाए हुए हैं । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य और लोक साहित्य का अंतर्संबंध अत्यधिक प्राचीन और मजबूत है । इस संबंध ने हिन्दी साहित्य को विविधता, गहराई और उसकी वास्तविकता के करीब बनाए रखा ।

लोक साहित्य और हिन्दी साहित्य का यह अंत:संबंध सिर्फ ऐतिहासिक नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक भी है । लोक साहित्य ने हिन्दी साहित्य को सिर्फ कथानक या विषय ही नहीं दिए, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति, उसकी शैली और उसकी भाव-भूमि का भी प्रभाव छोड़ा है । यही कारण है कि भक्तिकालीन सूफी कवि मल्लिक मोहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' के लिए जब कथावस्तु का चुनाव किया, तो उन्होने चित्तोढ़गढ़ के राजा रत्नसिंह और सिंघल द्वीप की राजकुमारी पदमावती को चुना । यदि उन्हें किसी खल पात्र की आवश्यकता हुई, तो मुसलमान बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजी के अतिरिक्त और कोई नहीं मिला । जायसी ने ऐसा जानबूझ कर नहीं किया था, बल्कि लोककथाओं में इन बातों का जैसा स्वरूप बखाना गया था, वैसा ही जायसी ने अपनी प्रेम कथा के लिए चुन लिया । इन सूफी कवियों ने अपने कथाओं के लिए भारतीय मूल की कथाओं को चुना, ताकि इन कथाओं से पूर्व परिचित यहाँ का लोकमन इनके काव्य रसास्वादन कर सके । ये सिर्फ सूफी कवियों की बात नहीं, बल्कि संत और वैष्णव कवियों ने भी इसे शिरोधार्य किया, जिसमें ग्रामांचलों के बहुरंगी चित्र देखने को मिलते हैं । यह सर्वमान्य है कि लोकजीवन की सादगी, उसकी आस्था, उसके संघर्ष और उसकी उम्मीदें हिन्दी साहित्य में गहराई से समाहित हैं । इसी वजह से हिन्दी साहित्य, खासकर भक्ति और रीतिकालीन साहित्य, लोक साहित्य से गहरे जुड़ाव का प्रमाण है ।

भारतीय लोक साहित्य की यह विशेषता रही है कि उसने समय-समय पर समाज के विभिन्न वर्गों की संवेदनाओं, उनके संघर्षों, उनके दुख-सुखों और उनकी आशाओं को अपने में समाहित किया है । यह लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह आमजन के जीवन का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है । यही वजह है कि जब हिन्दी साहित्य लोक साहित्य से प्रेरणा लेकर अपना स्वरूप गढ़ता है, तब वह और अधिक व्यापक और जनमानस का साहित्य बन जाता है । इस तरह से लोकसाहित्य और हिन्दी साहित्य का यह अंत:संबंध एक तरफ जहाँ साहित्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर वह समाज को भी समृद्ध करता है । लोक साहित्य के इस अंत:संबंध ने हिन्दी साहित्य को जन साधारण के और करीब लाकर खड़ा कर दिया । हिन्दी साहित्य ने समय-समय पर लोकजीवन से जुड़े विषयों को अपनाया है और उन्हें अपने साहित्य का हिस्सा बनाया है । विशेषकर भक्ति काल में जब साहित्य का मुख्य उद्देश्य जन-जन तक भक्ति और समाज के प्रति जिम्मेदारी के भाव को पहुँचाना था, तब लोक साहित्य से लिया गया यह अनुभव साहित्य की प्रामाणिकता और उसकी सामाजिक स्वीकृति का कारण

शेष पृष्ठ संख्या 38 पर

नेपाल यात्रा: साहित्य, कला, संस्कृति और श्रद्धा का संगम

आदि काल से भारत और नेपाल के संबंध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से अत्यंत घनिष्ठ रहे हैं । दोनों देशों के बीच भाषा, संवाद, परंपरा और साहित्य की एक साझा धारा निरंतर प्रवाहित होती रही है । ऐसे में जब हिन्दी साहित्यकारों का एक प्रतिनिधि समूह काठमांडू की सांस्कृतिक यात्रा पर जाता है, तो वह मात्र एक भ्रमण नहीं रह जाता, बल्कि भारत-नेपाल के बीच जीवंत सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बन जाता है ।

8 अप्रैल, 2026 को हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी, दिल्ली से जुड़े 20 साहित्यकारों का नेपाल प्रवास एक साधारण यात्रा नहीं, अपितु भारतीय और नेपाली सांस्कृतिक-साहित्यिक संबंधों का उत्सव बन गया । इस यात्रा ने पर्यटन और आध्यात्मिक अनुभव के साथ-साथ दोनों देशों के बीच भाषाई संवाद और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी सुदृढ़ किया । यह यात्रा अध्यात्म और साहित्यिक संवाद का ऐसा सुंदर समन्वय थी, जो सीमाओं से परे जाकर साझा विरासत की गहरी अनुभूति कराती है । उस दिन हम साहित्यकार उत्साह और जिज्ञासा से भरे, अनेक प्रश्नों को मन में संजोए, नेपाल की प्राकृतिक सुंदरता को देखने को लालायित होकर एक साथ दिल्ली से काठमांडू के लिए रवाना हुए । सुबह ठीक 7:50 बजे विमान ने उड़ान भरी और 9:30 बजे काठमांडू पहुँच गए। काठमांडू की धरती स्पर्श करते ही हिमालय की गोद में बसी इस नगरी की मनोरम प्राकृतिक छटा, हिमशृंखलाओं का दृश्य, सांस्कृतिक समृद्धि और स्नेहिल आत्मीयता की सुगंध से हमारा मन अभिभूत हो उठा । 'एपेक नेपाल' के प्रतिनिधियों ने एयरपोर्ट पर ही पारंपरिक अंगवस्त्र (खादा) पहनाकर, स्नेहपूर्ण मुस्कान और गरिमामय आतिथ्य से हमारा स्वागत किया । इसके बाद हमें बस में बैठाकर होटल येलो पेगोडा पहुँचाया गया, जहाँ होटल कर्मचारियों ने पुष्पगुच्छ और पेय पदार्थों से हमारा अभिनंदन किया । होटल की भव्य व्यवस्था, स्वादिष्ट भोजन और कर्मचारियों का आत्मीय व्यवहार देख हम सब भाव-विभोर हो गए । थोड़े विश्राम और भोजन के बाद हमने कार्यक्रम स्थल की ओर प्रस्थान किया । नेपाल पर्यटन बोर्ड के भव्य राजकीय भवन के सभागार में 'पुस्तक लोकार्पण एवं सम्मान समारोह' एपेक संस्था के अध्यक्ष श्री विश्वीमोहन श्रेष्ठ जी तथा श्री राजेन्द्र शलभ जी के निर्देशन में आयोजित हुआ । कार्यक्रम का कुशल संचालन प्रसिद्ध रेडियो एंकर सुश्री लीला अनमोल जी ने अत्यंत सौम्य, गरिमापूर्ण और सुरुचिपूर्ण ढंग से किया ।

इस समारोह का मुख्य आकर्षण काव्य-संग्रह 'अनुभूति' का लोकार्पण था, जिसमें भारतीय और नेपाली दोनों देशों के कवियों की रचनाएँ शामिल थीं । विशेष बात यह थी कि नेपाली भाषा में लिखी कविताओं का हिन्दी अनुवाद और हिन्दी कविताओं का नेपाली अनुवाद डॉ. रश्मि शर्मा जी ने अत्यंत संवेदनशीलता और निष्ठा से किया था । कवियों ने एक-दूसरे की भाषाओं में रचनाओं का सस्वर पाठ किया, जो दो देशों के बीच साहित्यिक सौहार्द, अपनत्व और भाषाई पुल का सुंदर उदाहरण था । अंत में सभी रचनाकारों को स्मृति चिह्न और सम्मान-पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया ।

डॉ. वनिता शर्मा

अगले दिन हम सभी भगवान पशुपतिनाथ के दर्शन हेतु गए । पशुपतिनाथ के साक्षात दर्शन से मन शांति, भक्ति और हर्ष से भर गया । स्वयंभूनाथ स्तूप की ऊँचाई से काठमांडू घाटी का मनमोहक विहंगम दृश्य देखकर हम रोमांचित हो उठे । बागमती नदी के तट पर स्थित यह मंदिर न केवल नेपाल का प्रमुख धार्मिक केंद्र है, बल्कि समग्र हिंदू आस्था का महत्त्वपूर्ण प्रतीक भी है । बाजारों में घूमते हुए हमने स्थानीय कला, संस्कृति और पारंपरिक वस्तुओं का अवलोकन किया तथा स्मृतियों के लिए कुछ वस्तुएँ भी खरीदीं । समय की कमी के कारण अन्य स्थानों का भ्रमण सीमित रहा, परंतु नेपाल की धरती की ऊर्जा, आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक विविधता हमें गहराई से प्रभावित कर गई । 'एपेक नेपाल' और उनकी समर्पित टीम द्वारा प्रदर्शित आत्मीयता और कुशल आयोजन प्रशंसनीय था । इस यात्रा के दौरान आयोजित काव्य-गोष्ठियों, विचार-विमर्श सत्रों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने भारत-नेपाल के साहित्यकारों के बीच सृजनात्मक आदान-प्रदान को नया आयाम दिया । यह यात्रा स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि साहित्य किसी भौगोलिक सीमा से बंधा नहीं होता ।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी, दिल्ली के साहित्यकारों की यह नेपाल यात्रा साहित्य, संस्कृति और अध्यात्म की त्रिवेणी का अनुपम उदाहरण है । इसने न केवल साहित्यकारों को नई दृष्टि दी, बल्कि भारत और नेपाल के बीच सांस्कृतिक सेतु को और अधिक मजबूत किया । भविष्य में ऐसी यात्राएँ और साहित्यिक आयोजन दोनों देशों के बीच मैत्री, संवाद और सहयोग को नई ऊँचाइयों तक ले जा सकते हैं ।

-डॉ. वनिता शर्मा
सेवानिवृत्त हिन्दी-संस्कृत विभागाध्यक्ष

नेपाल की साहित्यिक यात्रा

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी, दिल्ली एवं एपेक नेपाल के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित 'काठमांडू साहित्य उत्सव' में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के सौजन्य से नेपाल जाने का अवसर मिलना मेरे जीवन का अत्यंत गर्वपूर्ण एवं स्मरणीय क्षण था । यद्यपि मैं औपचारिक रूप से कवियों की सूची में शामिल नहीं थी, तथापि अकादमी का प्रतिनिधित्व करते हुए नेपाल के साहित्यकारों के साथ शामिल होने का यह अवसर मेरे लिए किसी सम्मान से कम नहीं था। अकादमी के अध्यक्ष आदरणीय श्री सुधाकर पाठक जी की अनुमति मिलते ही मेरे मन में उत्साह की लहर दौड़ गई ।

नेपाल अपनी प्राकृतिक सुंदरता, आध्यात्मिकता तथा सांस्कृतिक धरोहर के लिए विश्वविख्यात है । वहाँ जाने का अवसर मेरे लिए किसी सपने के साकार होने जैसा था । जैसे-जैसे यात्रा का दिन निकट आता गया, मेरी उत्सुकता बढ़ती गई । अंततः 8 अप्रैल, 2026 का वह मधुर प्रातःकाल आया, जब हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी से जुड़े साहित्यकार नेपाल की पुण्यभूमि की ओर रवाना हुए । वनिता जी के साथ मैं भी इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पहुँची । वहाँ सभी साहित्यकार पहले से उपस्थित थे । उनके चेहरों पर यात्रा की खुशी स्पष्ट झलक रही थी । सबने बड़ी आत्मीयता से एक-दूसरे का अभिवादन किया । थोड़ी देर की बातचीत के बाद चेक-इन प्रक्रिया पूरी कर हम विमान की ओर बढ़े ।

यह यात्रा मात्र एक साहित्यिक भ्रमण नहीं, बल्कि आत्मा को स्पर्श करने वाला सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक अनुभव थी। हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष आदरणीय श्री सुधाकर पाठक जी का यह प्रयास न केवल सराहनीय है, बल्कि अनुकरणीय भी । उन्होंने भारत और नेपाल के साहित्यकारों को एक साझा मंच प्रदान कर दोनों देशों की साझा साहित्यिक धरोहर को जोड़ने का सराहनीय कार्य किया है। यह उत्सव भाषाई समन्वय, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और साहित्यिक चेतना का अद्वितीय संगम था ।

जैसे ही हमारा विमान त्रिभुवन अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर उतरा और नेपाल की पावन धरती पर कदम रखा, लगा जैसे मैं किसी अनजान स्थान पर नहीं, बल्कि अपने ही आत्मीय संसार में प्रवेश कर रही हूँ । वहाँ का मनोहारी दृश्य हृदय को छू लेने वाला था । 'एपेक नेपाल' के सदस्यों ने पारंपरिक रीति-रिवाज से अंगवस्त्र पहनाकर तथा स्नेहपूर्ण अभिवादन से हमारा स्वागत किया । हवाई अड्डे से होटल येलो पेगोडा तक की यात्रा भी अत्यंत रोमांचक रही । रास्ते भर छोटे-छोटे मंदिर, रंग-बिरंगे घर और स्थानीय लोगों की सहज मुस्कान ने हमें मंत्रमुग्ध कर दिया । होटल पहुँचते ही हमें रंग-बिरंगे फूलों के सुंदर बुके दिए गए । हमने सामूहिक फोटो खिंचवाई । होटल की व्यवस्था अत्यंत सुव्यवस्थित, शांत और आरामदायक थी। थोड़ी देर विश्राम करने के बाद भोजन किया । होटल का वातावरण इतना सुखद था कि यात्रा की सारी थकान तुरंत दूर हो गई ।

प्रकाश कँवर

अपराह्न 3 बजे नेपाल पर्यटन बोर्ड, भृकुटि मंडप में एपेक नेपाल के 27 वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर 'पुस्तक लोकार्पण एवं सम्मान समारोह' का आयोजन हुआ । भारतीय और नेपाली कवियों की साझा काव्य संग्रह 'अनुभूति' का लोकार्पण वास्तव में दो भाषाओं, दो संस्कृतियों तथा दो संवेदनाओं के सुंदर संगम का प्रतीक बन गया । कार्यक्रम का संचालन प्रसिद्ध रेडियो एंकर सुश्री लीला अनमोल जी ने अत्यंत सजीव, संतुलित और हृदयस्पर्शी ढंग से किया । उनकी सरल एवं मधुर वाणी ने सभी श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया । मंच पर अतिथियों का पारंपरिक रूप से स्वागत किया गया । हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक जी ने अपने उद्बोधन में साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डाला । उन्होंने कहा कि साहित्य पढ़ने से व्यक्ति संवेदनशील बनता है और संस्कृति को जोड़ने का कार्य सच्चा साहित्य ही करता है । डॉ. रश्मि शर्मा जी द्वारा किए गए अनुवाद की सर्वत्र सराहना हुई। इसके उपरांत स्थानीय कवियों का सम्मान, कविता पाठ तथा स्मृति चित्रण हुआ । आयोजकों ने सभी अतिथियों के लिए पारंपरिक नेपाली भोजन की व्यवस्था की थी । भोजन के दौरान कुछ वरिष्ठ साहित्यकारों से हमारा आत्मीय परिचय हुआ, उन्होंने बड़ी स्नेहपूर्णता से अपने अनुभव हमारे साथ साझा किए ।

भोजनोपरांत हम होटल लौट आए । थोड़ी देर विश्राम के पश्चात् होटल के ग्राउंड फ्लोर में एपेक नेपाल के सदस्यों के साथ परिचय सम्मलेन हुआ । सुधाकर जी ने सभी का परिचय कराया तथा आगामी कार्यक्रमों की रूपरेखा पर विस्तृत चर्चा की गई । तत्पश्चात् हम आस-पास के स्थानों का भ्रमण करने निकले । पूरे कार्यक्रम के दौरान ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो हम सब एक ही परिवार के सदस्य हों । अलग-अलग स्थानों से आए होने के बावजूद, हम सबके बीच पारिवारिक आत्मीयता और सौहार्दता थी ।

दूसरे दिन स्थानीय आयोजकों ने सुबह 9 बजे से 1 बजे तक स्थानीय भ्रमण का कार्यक्रम रखा हुआ था । सबसे पहले हम पशुपतिनाथ मंदिर पहुँचे । बस में लीला अनमोल जी और उमा जी के साथ गाए गए मधुर गीतों और हल्के-फुल्के हंसी-मजाक ने पूरे समूह का माहौल आनंदमय बना दिया । बागमती नदी के तट पर स्थित यह प्राचीन धाम आस्था, संस्कृति और आध्यात्मिक ऊर्जा का अद्भुत संगम है । मंदिर परिसर में घंटियों की ध्वनि, मंत्रोच्चार और

धूप-अगरबत्ती की सुगंध ने मन को आलौकिक शांति प्रदान की। मंदिर की स्वर्णिम छत्र और लकड़ी की नक्काशी उसकी स्थापत्य कला की अद्वितीय पहचान करा रही थी। प्रवेश द्वार में पैर रखते ही विशालकाय नंदी की मूर्ति नजरों को अपनी ओर खींच लेती थी। भगवान पशुपतिनाथ के दर्शन करते ही मन भाव-विभोर हो उठा। ऐसा लगा जैसे स्वयं भगवान शिव का आशीर्वाद मिल गया हो। उस पावन क्षण में समय ठहर-सा गया था और भीतर एक अद्भुत दिव्य शक्ति का संचार हो रहा था। मंदिर के पीछे बहती नदी की स्वच्छ धारा का मनमोहक दृश्य हृदय को छू लेने वाला था। मंदिर परिसर के अंदर भी छोटे-छोटे शिव मंदिर बने हुए थे, जो अपनी भव्यता और पवित्रता से मन को आकर्षित कर रहे थे। पूजा-अर्चना के बाद जब हम बाहर आए, तो मंदिर के आस-पास की दुकानों में परंपरागत मोतियों, रुद्राक्ष की मालाओं और सिंदूर की आकर्षक वस्तुएँ आँखों को बाँध रही थीं। हमने वहाँ से कुछ यादगार वस्तुएँ खरीदीं। तत्पश्चात हम बौद्धनाथ स्तूप गए। वहाँ हमने बुद्ध के जीवन और उनकी गहन शिक्षाओं को करीब से अनुभव किया। स्तूप की विशाल एवं भव्य संरचना, घूमते हुए प्रार्थना चक्र और चारों ओर व्याप्त शांति का वातावरण मन को गहरे आध्यात्मिक आलोक से भर रहा था। बुद्ध की विशालकाय प्रतिमाएँ अपनी भव्यता और दिव्य मुद्रा से आध्यात्मिकता की अनंत कहानी बयान कर रही थीं। उस पावन स्थल पर मन एकदम शांत हो गया था और स्वयं आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो रहा था। यहाँ भी सभी ने स्मृतियों को कैद करने के लिए खूब तस्वीरें लीं और वीडियो बनाए।

दोपहर के भोजन के बाद शाम को भारतीय और नेपाली कवियों का द्वि-देशीय काव्य-पाठ आयोजित हुआ। हिन्दी कवियों ने नेपाली में तथा नेपाली कवियों ने हिन्दी में रचनाएँ पढ़ीं। इस अद्भुत अनुभव ने सिद्ध कर दिया कि भाषाएँ अलग हो सकती हैं, किंतु भावनाएँ एक होती हैं। श्री सुधाकर पाठक जी ने अनुवादक डॉ. रश्मि शर्मा जी सहित सभी एपेक नेपाल के पदाधिकारियों, स्थानीय साहित्यकारों का आभार व्यक्त किया।

अगले दिन होटल छोड़ने से पहले हमने दरबार स्क्वायर (विश्व धरोहर स्थल) का भ्रमण किया। प्राचीन नेवारी वास्तुकला, राजमहल, मंदिर और कुमारी घर की भव्यता देखकर हम मंत्रमुग्ध हो गए। समय सीमित होने के कारण हम शीघ्र ही होटल लौट आए। हम लोग बहुत सी मधुर यादों को साथ लेकर लौटे। नेपाल में हमें जो आत्मीयतापूर्ण आदर-सत्कार प्राप्त हुआ, वह केवल औपचारिक आतिथ्य नहीं था, बल्कि दो देशों के हृदयों का स्नेहिल मिलन था। यह सम्मान और स्नेह भारत तथा नेपाल के बीच की उस गहरी आत्मीयता को उजागर करता है, जहाँ सीमाओं से परे केवल प्रेम, अपनापन और सांस्कृतिक बंधन ही विद्यमान हैं।

-प्रकाश कँवर
कार्यकारिणी सदस्य, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी, दिल्ली

पृष्ठ संख्या 21 का शेष

रचना "कामायनी" ने कविता के नए प्रतिमान रच डाले। उनके नाटकों 'चंद्रगुप्त', स्कंदगुप्त','ध्रुवस्वामिनी' आदि में हमें राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय एकता का स्थूल रूप मिलता है। प्रसाद के नाटकों में बहिर्द्वन्द्व के साथ-साथ अन्तर्द्वन्द्व को भी परस्पर कार्य- कारण की महत्ता के रूप में स्वीकार किया गया। लोक साहित्य के सभी विधागत रूपों यथा, लोक गीत, लोक नाटक, प्रकीर्णक साहित्य तथा लोक संगीत के मामले में वाराणसी ने पर्याप्त योगदान दिया है। लोक साहित्य के क्षेत्र में काशी के डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय का अप्रतिम योगदान है।

समालोचना एवं हिन्दी निबंधों के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेर नाथ राय एवं डॉ. विद्या निवास मिश्र आदि का योगदान अतुलनीय है। साहित्य के स्थापित क्षेत्रों के अलावा, रेखा-चित्र एवं संस्मरण, दैनंदिनी (डायरी), आत्मकथा, जीवनी, यात्रा वृत्तांत, पत्र-साहित्य, बाल काव्य, बाल कहानी, बाल उपन्यास, बाल नाटक आदि सभी क्षेत्रों में वाराणसी के लेखक एवं विद्वान निरंतर लिख रहे हैं और अपनी कारयित्री प्रतिभा के द्वारा इन क्षेत्रों को समृद्ध एवं परिपुष्ट कर रहे हैं।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के सुयोग्य अध्यापकों ने स्वतंत्रता से पूर्व स्थापित हिन्दी विभाग की स्थापना के समय से ही प्रतिभाशाली छात्रों को तैयार करने की दिशा में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इन विद्वान अध्यापकों की सूची में सर्व श्री श्याम सुंदर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, केशव प्रसाद मिश्र, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. भोला शंकर व्यास, डॉ. शिव प्रसाद सिंह, डॉ.त्रिभुवन सिंह, डॉ. राम नरेश वर्मा, डॉ. विजय शंकर मल्ल, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. मैनेजर पांडेय, डॉ. रमेश कुंतल मेघ, डॉ. श्याम नारायण शुक्ल, डॉ. शंभु नाथ पांडेय, डॉ. बब्बन त्रिपाठी, डॉ. चौथी राम यादव, डॉ. राम नारायण शुक्ल, डॉ. श्री निवास पांडेय, डॉ. अवधेश प्रधान, डॉ. अवधेश नारायण मिश्र आदि जैसे विद्वानों के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने सुयोग्य विद्यार्थियों की कई पीढ़ियों को तैयार करने में बहुत बड़ा योगदान किया है ,जो आज देश और विदेशों में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन, प्रचार-प्रसार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण तथा अन्य क्षेत्रों में अपनी महत्त्वपूर्ण एवं जोरदार भूमिकाओं का निर्वाह बखूबी कर रहे हैं।

अंत में, यह कहना युक्तियुक्त होगा कि हिन्दी के विकास और संवर्द्धन में वाराणसी ने जो कार्य किए हैं, वे स्तुत्य हैं तथा भारत राष्ट्र को उम्मीद है कि भविष्य में हिन्दी के समक्ष आने वाली हर चुनौतियों से निपटने के लिए भी वाराणसी की भूमिका ऐसी ही या इससे भी अधिक बनी रहेगी।

-डॉ. श्याम किशोर पांडेय
सहायक महाप्रबंधक (सेवानिवृत्त), बैंगलोर

भारतीय ज्ञान प्रणाली के संदर्भ में भारतीय भाषाएँ

शोध सारांश : भारत एक प्राचीन राष्ट्र है, जहाँ भाषाई वैविध्यता और सामाजिक संगम का अद्भुत मिश्रण है । भारत की प्राचीन परंपरा को संजोए आज विशालकाय रूप में भारतीय ज्ञान प्रणाली हमारे समक्ष खड़ी है । भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) में भारतीय भाषाएँ सदियों से ज्ञान के संरक्षण, सृजन और प्रसार की वाहक रही है, जो प्राचीन ग्रंथों के जरिए दर्शन, शिक्षा, साहित्य, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, अध्यात्म, योग, संस्कृति तथा अन्य कई पहलुओं की जानकारी देती है । भारतीय ज्ञान प्रणाली में भाषा 'ज्ञान का प्रकाश' है, जिसके बिना किसी भी विषय का बोध असंभव है । आज भारत सरकार विभिन्न नीतियों, कार्यक्रमों और पहलों के जरिए भारत की भाषाई विरासत के संरक्षण और संवर्धन के लिए लगातार काम कर रही है । आज भारत सरकार भारतीय भाषाओं को 'शास्त्रीय भाषा' के रूप में मान्यता देने में इसलिए तत्पर है, ताकि उसके प्राचीन ज्ञान, दर्शन और मूल्यों को संरक्षित और प्रसारित किया जा सके । आज भारतीय ज्ञान प्रणाली के जरिए भारतीय भाषाओं की महत्ता और उसके योगदान की चर्चा को अपने शोध-पत्र के द्वारा केंद्र में लाने का मकसद यह है, ताकि उन्हें संरक्षित और संवर्धित किया जा सके और आगे के अध्ययन के प्रयासों को बढ़ावा मिल सके । साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जा सके कि समय के साथ दुनिया में उसकी प्रासंगिकता बनी रहे । आज भारत सरकार ज्ञान प्रणाली को नई शिक्षा नीति- 2020 में लागू करने के उद्देश्य से अलग-अलग स्तर पर अपने तरीके से कार्य कर रही है ।

कुंजी शब्द : भारतीय ज्ञान प्रणाली, भारतीय भाषाएँ, मातृभाषा, नई शिक्षा नीति-2020, शास्त्रीय भाषाएँ, क्षेत्रीय भाषाएँ, भाषा दर्शन, भाषाई विविधता ।

भूमिका: भारत एक विविधतापूर्ण देश है, जहाँ अलग-अलग जातियों, धर्मों, संप्रदायों और संस्कृतियों के लोग वास करते हैं । देश भर में अलग-अलग प्रकार की भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं । भारतीय भाषाएँ क्षेत्रीय विविधताओं को प्रतिबिंबित करती हैं और इन भाषाओं के माध्यम से विभिन्न समुदायों की जीवनशैली, इतिहास, संस्कृति, परंपराएँ और मूल्य संरक्षित रहते हैं । भारतीय भाषाएँ विभिन्न जातियों और समुदायों के बीच संवाद स्थापित करने का एक सशक्त माध्यम बनती हैं । ये भाषाएँ भारतीय समाज की विविधता, संघर्ष और समृद्धि को प्रतिबिंबित करती हैं । ये भाषाएँ केवल हमारे ऐतिहासिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विरासत को नहीं दर्शाती है, बल्कि समाज के विभिन्न पक्षों को उजागर करने में भी अपनी भूमिका दर्शाती है । भारत की अनेकता में एकता की अवधारणा का मुख्य आधार भाषाई विविधता है । भारतीय भाषाओं ने सदियों से भारतीय समाज की सोच को एक आकार देने का कार्य किया है । यह भाषाई साक्षरता, विचार-क्षमता, विश्लेषण क्षमता और आलोचनात्मक दृष्टि को संपोषित करने का कार्य है । प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय भाषाओं ने भारतीयता की परिभाषा को एक नया आयाम प्रदान किया है । आज आधुनिकता और वैश्वीकरण के जबरदस्त प्रभाव के चलते भारतीय भाषाओं को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है । यही वजह है कि आज भारतीय भाषाओं का अध्ययन-विश्लेषण, शोध-अनुसंधान तथा वैज्ञानिक नजरिया पैदा किया जा रहा है । आज भारतीय भाषाओं का पुनरुद्धार और सुदृढ़ीकरण प्राचीन ज्ञान प्रणालियों के प्रवेश द्वार के रूप में कार्य करता हुआ नजर आ रहा है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 में भारतीय भाषाओं के पुनर्स्थापन पर बल दिया गया है, जिसमें मातृभाषा में शिक्षा, बहुभाषिकता और त्रिभाषा सूत्र जैसे उपायों की सिफारिश की गई है । इस नीति के द्वारा भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा की गुणवत्ता और सांस्कृतिक संरक्षण को सुनिश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है । इसके अतिरिक्त 3 अक्टूबर 2024 तक भारत सरकार ने कुल 11- तमिल(2004), संस्कृत(2005), कन्नड(2008), तेलुगु (2008), मलयालम(2013), उड़िया(2014), मराठी(2024), पाली(2024), प्राकृत(2024), असमिया(2024) और बंगाली(2024) आदि भारतीय भाषाओं को 'शास्त्रीय भाषा' (Classical Language) का दर्जा प्रदान किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार भारतीय ज्ञान प्रणाली के जरिए भारतीय भाषाओं को संरक्षित करने में अपनी अहम भूमिका निभा रही रही ।

आनंद दास

विश्लेषण: भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System) विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध ज्ञान परंपराओं में से एक है । भारत की ज्ञान प्रणाली ईश्वर केंद्रित नहीं, अपितु मानव केंद्रित है जो मानव जीवन की सफलता और मानव कल्याण के लिए लोगों को प्रेरित करता है । हालांकि भारतीय ज्ञान प्रणाली की जड़ें भारतीय भाषाओं में गहराई से निहित हैं । प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय भाषाओं ने ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों- दर्शन, साहित्य, कला, व्याकरण, विज्ञान, गणित, भाषा विज्ञान, खगोल विज्ञान, चिकित्सा और सामाजिक चिंतन को संरक्षित और विकसित करने में अपनी अपार क्षमता को दर्शाया है । भारतीय ज्ञान प्रणाली में भारतीय भाषाओं का योगदान अत्यंत प्रगाढ़ और बहुआयामी है । भारतीय ज्ञान प्रणाली की 'आत्मा' ही भारतीय भाषाओं में व्याप्त है, क्योंकि ज्ञान का सृजन, संरक्षण, संप्रेषण और विकास भाषा के जरिए ही

मुमकिन होता है । आज हम भारतीय ज्ञान प्रणाली में भारतीय भाषाओं के महत्त्व को बखूबी समझ रहे हैं । आज हम भारतीय ज्ञान प्रणाली में भारतीय भाषाओं के महत्त्व और उसके बहुमूल्य योगदान को इसलिए केंद्र में लाने का प्रयास कर रहे हैं, ताकि भारतीय भाषाओं के जरिए ज्ञान की स्वदेशी परंपराओं को आज के संदर्भ में पुनर्जीवित किया जा सके ।

भारतीय ज्ञान प्रणाली में भारतीय भाषाओं की विरासत-

भारतीय ज्ञान प्रणाली के हजारों साल की पुरानी विरासत में भारतीय भाषाओं का योगदान मूलभूत, अनिवार्य और अतुलनीय रहा है । भारत में भाषाएँ सामाजिक पहचान का भी एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है । भारतीय भाषाएँ भारतीय समाज की सोच, परंपराओं, रीति-रिवाजों और विश्वासों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अभिव्यक्त करने का एक माध्यम है । अपनी अनूठी एवं प्राचीन परम्पराओं के चलते भारतीय भाषाएँ न केवल देश में, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी अलग छाप छोड़ने में सक्षम हुईं हैं । भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्तमान में 22 आधिकारिक भाषाएँ हैं और समाज में हजारों बोलियाँ व्याप्त हैं । भारतीय संविधान का भाग 17 और अनुच्छेद 343 से 351 मुख्य रूप से राजभाषा और अन्य भाषाओं के अधिकारों से संबंधित है । भारतीय भाषाओं के प्रचार समिति के अध्यक्ष पद्मश्री चमू कृष्ण शास्त्री कहते हैं कि " भारतीय ज्ञान परंपरा सभी भाषाओं में है । इसे देखते हुए एनईपी में संस्कृत ही नहीं कन्नड़, मलयालम सहित सभी भारतीय भाषाओं को समान महत्त्व दिया गया है ।" भारतीय संविधान में आधिकारिक भारतीय भाषाओं के संरक्षण और उनके प्रयोग के लिए व्यापक अधिकार दिए गए हैं । यह भाषाई विविधता ज्ञान के प्रसार को जन-जन तक पहुंचाने में सहायक होती है । प्राचीन काल में संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत और पालि भाषाएँ भी विकसित हुईं, जिनका प्रभाव समय के साथ आधुनिक भारतीय भाषाओं पर पड़ा है । भारत में भाषाई विविधता का इतिहास अत्यंत समृद्ध रहा है । मध्यकालीन भारत में क्षेत्रीय बोलियों का विकास हुआ जिसने धीरे-धीरे हिन्दी, मराठी, बंगाली, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि जैसे अन्य कई आधुनिक भाषाओं का रूप धारण किया है । प्रत्येक भाषा ने अपने क्षेत्र की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परंपराओं को गहराई से प्रतिबिंबित किया है । भाषाओं के विकास में राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलनों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । भारत की प्राचीन भाषाओंख्रसंस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं- हिन्दी, तमिल, बांग्ला, पंजाबी, मराठी, गुजराती, उर्दू, असमिया, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, नेपाली, मणिपुरी, संथाली और बोडो आदि ने भारतीय ज्ञान प्रणाली को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

संस्कृत भाषा का योगदान-

भारतीय ज्ञान प्रणाली में संस्कृत भाषा 'प्राथमिक स्रोत भाषा' है । शायद इसी के चलते हम संस्कृत को अक्सर 'ज्ञान की जननी' भी कहते हैं । भारत के अधिकांश प्राचीन ग्रंथ संस्कृत में ही रचे गए। संस्कृत भाषा में उपलब्ध प्राचीन ग्रंथ; जैसे- कि वेद, उपनिषद और पुराण, भारतीय ज्ञान प्रणाली के मूल स्तंभ हैं । इन ग्रंथों में ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, साहित्य और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत जानकारी दी गई है । प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था में 'गुरुकुल परंपरा' को संस्कृत ही आगे बढ़ा रही थी । संस्कृत में ही भारतीय दर्शन और अध्यात्म की सभी प्रमुख धाराएँ विकसित हुई हैं । संस्कृत का व्याकरण अत्यंत वैज्ञानिक और व्यवस्थित माना जाता है । पाणिनि की अष्टाध्यायी विश्व की सबसे उन्नत व्याकरणिक कृति मानी जाती है । उन्होंने भाषा-विज्ञान (Linguistics) के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया है । इस भाषा के ग्रंथों में ही गणित और खगोल विज्ञान का अद्भुत विकास हुआ है । भारतीय कला की शास्त्रीय परंपरा भी संस्कृत पर आधारित है । आयुर्वेदिक ज्ञान की प्रमुख भाषा संस्कृत रही है, जो चिकित्सा विज्ञान को व्यवस्थित और संरक्षित करने में अपनी भूमिका निभा रही है । संस्कृत ने भारतीय सौंदर्य शास्त्र (Aesthetics) और साहित्यिक परंपरा को उच्चस्तर प्रदान किया है । संस्कृत ग्रंथों में सामाजिक जीवन के नियम और नैतिकता के कई पाठ देखने को मिल जाते हैं । संस्कृत भाषा भारतीय ज्ञान प्रणाली की 'आत्मा' है, जो हर क्षेत्र में अपनी केंद्रीय भूमिका निभा रही है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान प्रणाली के पुनरुत्थान में संस्कृत की संरचना उपयोगी सिद्ध हो सकती है ।

पाली भाषा का योगदान-

पाली भाषा ने भारतीय ज्ञान प्रणाली को लोकतांत्रिक, समावेशी और मानव-केंद्रित स्वरूप प्रदान किया है । पाली ने बौद्ध धर्म और दर्शन को जनमानस तक पहुँचाकर सामाजिक समानता की स्थापना करने तथा वैश्विक स्तर पर भारतीय विचारों के प्रसार में केंद्रीय भूमिका निभाई है । यह भाषा उस परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है जो ज्ञान को सरल, सुलभ और लोकाभिमुख बनाने के लिए प्रतिबद्ध रही है । इस प्रकार हम देखते हैं कि पाली भाषा 'लोकज्ञान की भाषा' के रूप में स्थापित हुई । पाली के अपने समृद्ध व्याकरण ग्रंथ हैं, जैसे कच्चायन व्याकरण, मोग्गल्लान व्याकरण और सद्दनीति । ये ग्रंथ भाषा की वैज्ञानिकता को दर्शाते हैं तथा भारतीय भाषाओं के विकास में सक्रिय योगदान देते रहे हैं । पाली भाषा के माध्यम से भारतीय ज्ञान विश्व के अन्य देशों तक पहुँचा है, जिसने आज भारतीय ज्ञान प्रणाली को वैश्विक पहचान दिलाने में विशिष्ट भूमिका निभाई है ।

इस भाषा ने सामाजिक समानता, सामाजिक न्याय और बौद्धिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देने में काफी मदद की है, जिसके

कारण आज भारतीय ज्ञान प्रणाली समावेशी की श्रेणी में खड़ी है । पाली ग्रंथों में मानव मन का गहरा विश्लेषण मिलता है, जो आधुनिक मनोविज्ञान के लिए अनुसंधान के महत्त्वपूर्ण सूत्र प्रदान कर सकता है। प्राचीन भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए पाली का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इसके साहित्य में अतीत पर प्रकाश डालने वाली बहुमूल्य सामग्रियाँ उपलब्ध हैं । कई पाली ग्रंथ अभी भी पांडुलिपियों में छिपे हुए हैं, जिनकी पहुँच कठिन है । श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैंड जैसे बौद्ध देशों तथा चटगाँव जैसे क्षेत्रों के साथ-साथ जापान, कोरिया, तिब्बत, चीन और मंगोलिया में भी पाली का अध्ययन निरंतर जारी है, जहाँ बौद्ध समुदाय प्रमुख रूप से निवास करते हैं । ऐतिहासिक रूप से पाली भाषा परिवर्तनकारी भूमिका निभाती रही है और आज भी बौद्ध अध्ययन तथा मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रासंगिक बनी हुई है । इस प्रकार भारतीय ज्ञान प्रणाली में पाली भाषा नैतिकता, मनोविज्ञान और ज्ञान के सिद्धांत से संबंधित विभिन्न विषयों पर गहराई से विचार और गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है ।

प्राकृत भाषा का योगदान-

भारतीय ज्ञान प्रणाली में प्राकृत भाषा ने भारतीय बौद्धिक परंपरा को व्यापक आधार प्रदान किया है । यह भाषा मध्यकालीन भारतीय-आर्य भाषाओं के समूह का प्रतिनिधित्व करती है । यह भाषा उन विविध परंपराओं और दर्शनों को भी समाहित करती है, जिन्होंने इस उपमहाद्वीप के ऐतिहासिक आख्यान को आकार दिया है। भाषा-व्याकरण को समृद्ध बनाने के लिए वररुचि ने 'प्राकृत प्रकाश' और आचार्य हेमचन्द्र ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' लिखे थे । महात्मा बुद्ध और महावीर ने अपने उपदेशों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए प्राकृत का प्रयोग किया था । इसका प्रभाव क्षेत्रीय साहित्य में भी देखा जा सकता है । ज्योतिष, गणित, भूविज्ञान, रसायन विज्ञान और वनस्पति विज्ञान जैसे विविध विषयों के विकास में भी प्राकृत भाषा का उल्लेखनीय योगदान रहा है । प्राकृत भारतीय भाषाविज्ञान और बोलियों के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण है और इसकी एक समृद्ध विरासत रही है । राजभाषा हिन्दी का विकास भी प्राकृत-अपभ्रंश परंपरा से विकसित हुई है । वैदिक भाषा में भी प्राकृत के अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्व विद्यमान हैं, जो भारत के भाषाई विकास के अध्ययन में इसकी उपयोगिता को रेखांकित करते हैं । प्राकृत भाषा में लिखे गए शिलालेख भारत के इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं । मौर्य-पूर्व काल के अनेक शिलालेखों के साथ-साथ सम्राट अशोक के अभिलेख तथा कलिंग नरेश खारवेल का प्रसिद्ध हाथीगुम्फा शिलालेख मुख्यत: प्राकृत भाषा में ही अंकित हैं । आचार्य भरतमुनि ने अपनी महान कृति 'नाट्यशास्त्र' में प्राकृत को बहुसंख्यक भारतीयों की भाषा बताया है । यह भाषा कलात्मक अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक विविधता और लोकजीवन की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में अत्यंत सक्षम रही है ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्राकृत भाषा ने भारतीय संस्कृति के लोकपक्ष को सशक्त आधार प्रदान किया । यह जनसामान्य के जीवनानुभवों, व्यावहारिक ज्ञान और सांस्कृतिक चेतना की संवाहक रही है तथा भारतीय ज्ञान-परंपरा के विकास में इसकी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है ।

हिन्दी भाषा का योगदान

हिन्दी भाषा ने भारतीय ज्ञान प्रणाली को व्यापक दृष्टिकोण से समृद्ध किया है । यह भाषा केवल ज्ञान का प्रसार ही नहीं करती, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीय पहचान की अभिव्यक्ति भी है । हिन्दी ने देश के विभिन्न हिस्सों को वैचारिक और आत्मीय रूप से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । यह भारतीय ज्ञान परंपरा की 'अखंडता' और 'समग्रता' को बनाए रखने का सशक्त माध्यम बनी है । आधुनिक काल में हिन्दी भाषा ज्ञान-विज्ञान, अनुवाद, आयुर्वेद, योग तथा तकनीकी शब्दावली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है । भारतीय ज्ञान प्रणाली विभाग और राजभाषा विभाग जैसे संस्थान पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक संदर्भों में हिन्दी के माध्यम से प्रोत्साहित करने का कार्य कर रहे हैं । अत: हम यह कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में हिन्दी भाषा वह 'महानदी' की धारा है, जो प्राचीन ज्ञान के स्रोतों को आधुनिक समाज की आवश्यकताओं से जोड़ने में निरंतर तत्पर है ।

बांग्ला (बंगाली) भाषा का योगदान

भारतीय ज्ञान प्रणाली में बांग्ला भाषा का विशेष स्थान है । इसने प्राचीन वैदिक और बौद्ध ज्ञान को संरक्षित करने के साथ-साथ उसे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, शिक्षा, राष्ट्रवाद और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में नया आयाम प्रदान किया है । मध्यकाल में बांग्ला साहित्य ने भारतीय ज्ञान प्रणाली को 'भक्ति मार्ग' की नई दिशा दी । मध्यकालीन बंगाल में चैतन्य महाप्रभु के भक्ति आंदोलन ने 'अचिंत्य भेदाभेद' के दर्शन के माध्यम से भक्ति को शास्त्रीय आधार प्रदान किया । कृत्तिवास ओझा ने 'रामायण' तथा काशीराम दास ने 'महाभारत' का बांग्ला अनुवाद कर इन महाकाव्यों को आम जनता तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया । 19वीं शताब्दी के बंगाल पुनर्जागरण (Bengal Renaissance) ने भारतीय ज्ञान प्रणाली को आधुनिकता से जोड़ने में अग्रणी भूमिका निभाई । राजा राममोहन राय ने उपनिषदों का बांग्ला अनुवाद किया और भारतीय समाज सुधार के लिए ब्रह्म समाज की स्थापना की । ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने शिक्षा व्यवस्था को सुव्यवस्थित करने के साथ 'वर्णपरिचय' के माध्यम से आधुनिक बांग्ला भाषा की नींव रखी । उसी काल में रेवरेंड के.एम. बनर्जी ने 'विद्याकल्पद्रुम' नामक बांग्ला

विश्वकोष की रचना की, जिसमें विविध विषयों का ज्ञान संकलित किया गया । जगदीश चंद्र बसु और सत्येंद्र नाथ बसु जैसे वैज्ञानिकों ने बांग्ला में वैज्ञानिक लेखन कर विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । रवींद्रनाथ टैगोर (एशिया के पहले नोबेल पुरस्कार विजेता) तथा बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय (वंदे मातरम् के रचयिता) ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय मूल्यों और राष्ट्रीयता को वैश्विक पहचान दिलाई । टैगोर द्वारा स्थापित शांति निकेतन भारतीय शिक्षा पद्धति और कला का एक अद्वितीय केंद्र बनकर उभरा । बांग्ला भाषा ने रवींद्र संगीत और नजरुल गीति जैसी विशिष्ट संगीत शैलियों को जन्म दिया, जो भारतीय शास्त्रीय संगीत के रागों और लोक धुनों का सुंदर मिश्रण हैं । बंगाल की कला और चित्रकला ने भी भारतीय सौंदर्यशास्त्र को नई ऊर्जा प्रदान की । इस प्रकार बांग्ला भाषा भारतीय ज्ञान प्रणाली को जीवंत, समृद्ध और प्रगतिशील स्वरूप प्रदान करती है ।

तमिल भाषा का योगदान

तमिल को दुनिया की सबसे पुरानी जीवित शास्त्रीय भाषाओं में से एक माना जाता है । तमिल का 'संगम साहित्य' भारतीय ज्ञान प्रणाली में मानव जीवन और प्रकृति के संबंध को समझने का महत्त्वपूर्ण स्रोत है, जो उस समय के समाज, राजनीति और नैतिकता का दर्पण है । तमिल भाषा का 'तोल्काप्पियम' (Tolkappiyam) केवल व्याकरण ग्रंथ नहीं है, बल्कि मनोविज्ञान, मानव व्यवहार और पारिस्थितिकी (Ecology) का गहन विश्लेषण है । इसमें 'तिणै' (Thinai) की अवधारणा है, जो मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंध को पाँच भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित करती है । तमिल के संत 'तिरुवल्लुवर' द्वारा रचित 'तिरुक्कुरल' भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक उत्कृष्ट स्तंभ है । यह ग्रंथ धर्म, अर्थ और काम पर आधारित है । यह प्रबंधन, मित्रता, राजनीति, अर्थशास्त्र, कृषि और व्यक्तिगत नैतिकता जैसे जीवन के कई पहलुओं पर मार्गदर्शन करता है जिसे 'विश्व वेद' (Universal Veda) कहकर भी संबोधित किया जाता है । भक्ति आंदोलन के 'अलवारों' (वैष्णव) और 'नयनमारों' (शैव) की रचनाओं ने भारतीय आध्यात्मिक चेतना को नई दिशा दी है और उनके भजनों को वेदों का सार माना जाता है । 'तिरुमुलर' जैसे सिद्धों ने 'तिरुमंदिरम' (Thirumandiram) जैसे ग्रंथों के माध्यम से योग दर्शन और 'सिद्ध चिकित्सा पद्धति' (Siddha Medicine) का विस्तृत ज्ञान प्रदान किया है । काँचीपुरम के पास स्थित 'उत्तरमेरुर शिलालेख' (Uttiramerur Inscription) भारतीय ज्ञान प्रणाली में 'लोकतंत्र' और 'स्वशासन' का बेहतरीन प्रमाण है । 'कुडावोलाई' पद्धति के माध्यम से ग्राम परिषद के सदस्यों का चुनाव पारदर्शी तरीके से किया जाता था । इसमें 10वीं शताब्दी की चुनाव प्रक्रिया, उम्मीदवारों की योग्यता और भ्रष्ट अधिकारियों को हटाने के कड़े नियमों का उल्लेख है, जो आधुनिक लोकतंत्र की व्यवस्था को सुदृढ़ करता है । 'चोल', 'चेर', 'पांड्य' और 'पल्लव' राजाओं के अधीन तमिल वास्तुशिल्प ने जो ऊंचाइयां छुई, वे भारतीय इंजीनियरिंग कौशल का प्रमाण हैं । दूसरी शताब्दी में कावेरी नदी पर बना यह बांध दुनिया के सबसे पुराने जल-नियमन ढांचों में से एक है, जो आज भी कार्यरत है । महाबलीपुरम के 'रथ मंदिर' और तंजावुर का 'बृहदेश्वर मंदिर' न केवल धार्मिक केंद्र थे, बल्कि खगोल विज्ञान और गणित के व्यावहारिक अनुप्रयोग के केंद्र भी थे । प्राचीन काल में तमिल भाषा दक्षिण-पूर्व एशिया में व्यापार और संस्कृति के आदान-प्रदान की मुख्य भाषा थी, जिसके प्रमाण इंडोनेशिया और थाईलैंड जैसे देशों में मिलते हैं । तमिल संस्कृति में 'अराम' (Dharma), 'पोरुल' (Artha), 'buce' (Kama) और 'वीडू' (Moksha) के संतुलित विकास पर जोर दिया गया है, जो भारतीय पुरुषार्थ की अवधारणा के अनुरूप है । तमिल साहित्य के 'शिलप्पदिकारम्' और 'मणिमेकलाई' जैसे महाकाव्य के जरिए भारतीय ज्ञान प्रणाली को साहित्यिक और सौंदर्यात्मक समृद्धि मिली है । 'भरतनाट्यम' (शास्त्रीय नृत्य) और 'कर्नाटक संगीत' भारतीय कला और सौंदर्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है । इस प्रकार हम देखते हैं कि तमिल भाषा भारतीय ज्ञान प्रणाली की वह धारा है जो प्राचीनता और आधुनिकता को जोड़ती है।

असमिया भाषा का योगदान

भारतीय ज्ञान प्रणाली में असमिया भाषा और साहित्य का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पूर्वोत्तर भारत के प्राचीन 'प्राग्ज्योतिषपुर' (असम) की यह भाषा ज्ञान के साथ-साथ अध्यात्म, विज्ञान, चिकित्सा, नृत्य-कला, राजनीति और समाजशास्त्र जैसे विविध क्षेत्रों को जनसाधारण तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है । श्रीमंत शंकरदेव ने अपनी कृतियों 'कीर्तन-घोषा' और 'भक्ति-रत्नावली' के माध्यम से भारतीय ज्ञान प्रणाली के आध्यात्मिक और नैतिक आयाम को नई दिशा प्रदान की । अहोम राजाओं के शासनकाल में घटनाओं का तिथि-वार और वस्तुनिष्ठ विवरण लिखने की परंपरा प्रारंभ हुई । जबकि मध्यकालीन भारत के अन्य हिस्सों में इतिहास प्रायः काव्य और अतिशयोक्ति के रूप में लिखा जाता था, वहीं असमिया भाषा की 'बुरंजी' परंपरा ने यथार्थपरक इतिहास-लेखन का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया । ये बुरंजियाँ मध्यकालीन राजनीति, कूटनीति और युद्ध-कौशल के अध्ययन के प्रमुख प्रामाणिक स्रोत हैं । सुकुमार बरकाइथ द्वारा रचित 'हस्तिविद्यार्णव' ग्रंथ हाथियों के विभिन्न प्रकारों, उनके रोगों तथा उपचार का सचित्र वैज्ञानिक विश्वकोश है । यह प्राचीन भारतीय पशु-चिकित्सा विज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है । असम के जनजातीय और ग्रामीण समुदायों के जड़ी-बूटियों संबंधी समृद्ध ज्ञान को

'बेज-मुष्टि' (वैद्यों के नुस्खे) के रूप में संकलित किया गया, जो आयुर्वेद की एक स्थानीय और समृद्ध शाखा के रूप में भारतीय ज्ञान प्रणाली को और मजबूत बनाता है । असमिया भाषा ने 'सत्रों' (वैष्णव मठों) की स्थापना में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । ये सत्र आज भी संगीत, सत्रीय नृत्य और अंकिया नाट (नाटक) के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा को जीवंत रखे हुए हैं । इस प्रकार असमिया भाषा भारतीय ज्ञान प्रणाली को क्षेत्रीय विविधता, आध्यात्मिक गहराई और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करती हुई उसे समृद्ध एवं समग्र रूप देती है ।

निष्कर्ष: भारतीय भाषाओं ने आधुनिक ज्ञान और विज्ञान को भी बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । आज संविधान में भारतीय भाषाओं को संरक्षण का दर्जा देने के साथ-साथ भारतीय भाषाओं को आधिकारिक मान्यता प्रदान की गई है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 में उल्लिखित शैक्षिक ढांचे में भारतीय भाषाओं की मान्यता और संवर्धन न केवल सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करता है, बल्कि भारत में अधिक समावेशी, अभिनव और जुड़े हुए शैक्षिक परिदृश्य का मार्ग भी प्रशस्त करता है । राष्ट्रीय भाषा नीति, नई शिक्षा नीति- 2020 एवं भाषा संवर्धन के कार्यक्रम इन प्रयासों में शामिल हैं। विश्वविद्यालयों और भाषा संस्थानों में भारतीय भाषाओं के पाठ्यक्रम एवं अनुसंधान परियोजनाएँ चलाई जा रही हैं । इनसे नई पीढ़ी में भाषा के प्रति जागरूकता एवं संवेदना बढ़ रही है । डिजिटल मीडिया, मोबाइल एप्स, ऑनलाइन पुस्तकालय एवं ई-पुस्तक परियोजनाओं ने भारतीय भाषाओं के साहित्य को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । साहित्य सम्मेलन, पुस्तक मेलों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से भारतीय भाषाओं का प्रचार-प्रसार एवं संरक्षण सुनिश्चित किया जा रहा है । अत: हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान प्रणाली के माध्यम से भारतीय भाषाएँ निश्चय ही भविष्य में अपनी समृद्धि एवं जीवंतता को कायम करने में सक्षम होगी ।

-श्री आनंद दास
सहायक प्राध्यापक, श्री रामकृष्ण बी.टी. कॉलेज
दार्जिलिंग (Govt-Aided)

पृष्ठ संख्या 30 का शेष

बना । रीतिकाल में भी लोक साहित्य का प्रभाव कम नहीं हुआ । रीतिकालीन कवियों ने राजदरबारों के संरक्षण में रहते हुए भी लोकजीवन और उसके विविध रंगों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया । लोककाव्य में वर्णित वीरता, प्रेम, सौंदर्य और करुणा के भाव रीतिकालीन साहित्य में स्पष्ट रूप से झलकते हैं । रीतिकालीन साहित्य में जितने भी नायक-नायिकाओं के चरित्र-चित्रण किए गए हैं, उनमें से कई सीधे लोक साहित्य से प्रेरित थे ।

इस प्रकार, हिन्दी साहित्य और लोक साहित्य का संबंध सदैव गहरा और प्रगाढ़ रहा है । लोक साहित्य ने हिन्दी साहित्य को विषय-वस्तु, शैली, भाषा और भाव-भूमि प्रदान की, जिससे हिन्दी साहित्य अधिक समृद्ध और जीवंत बन सका । जब कोई अपने और पराये की संकुचित सीमा से ऊपर उठकर सामान्य मनुष्यता की भूमि पर पहुँच जाए, तो समझना चाहिए कि वह साहित्य धर्म का निर्वाह कर रहा है। (साहित्य का शास्त्र, नित्यानन्द तिवारी, संस्करण-2019, पृष्ठ संख्या-14) इस प्रकार साहित्य के संसार में शब्द और अर्थ सौंदर्य के लिए आपस में होड़ करते हुए लोकमंगल के ऊँचे आदर्श की स्थापना करते हैं । इसी को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हृदय की मुक्तावस्था कहा है ।

-डॉ. अलका आनंद
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शिष्टाचार भेंट

आ. डॉ. सच्चिदानंद जोशी जी से मिलना मुझे हमेशा ही नई ऊर्जा से भर देता है । आज लंबे समय बाद आपके कार्यालय में आपसे मार्गदर्शन लेने और कुछ कार्यक्रमों की चर्चा का सुयोग बना। डॉ. सच्चिदानंद जोशी जी इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य सचिव हैं। अभी हाल ही में आपने भारतीय विरासत संस्थान के कुलपति का अतिरिक्त पदभार भी संभाला है । संस्कृति मंत्रालय के विभिन्न प्रकल्पों की महत्त्वपूर्ण योजनाओं के कार्यान्वयन सहित भारतीय संस्कृति, भाषा, कला, साहित्य के कार्यों में आपका महती योगदान रहता है । आपका व्यक्तित्व और कृतित्व भारत की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षक का है। आप एक व्यक्ति के रूप में एक पूर्ण संस्थान हैं। हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एवं डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र के संयुक्त तत्त्वावधान में दिल्ली के विभिन्न विद्यालयों के प्राचार्यों के लिए भारतीय संविधान और संस्कृति पर केंद्रित एक दिवसीय कार्यशाला में मुख्य अतिथि के रूप में आप आमंत्रित थे, लेकिन आपकी पूरी कोशिश के बाद भी किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में व्यस्तता के कारण आपकी उपस्थिति नहीं हो पाई थी । आज की इस भेंट में समारोह का स्मृति चिन्ह देने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ ।

शिक्षण का माध्यम : मातृभाषाएँ

विज्ञान, तंत्र-विज्ञान तथा वैश्वीकरण के युग में धर्म, समाज, जीवन-मूल्य, भाषा, साहित्य एवं कला को परखने के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उसकी गति, प्रभाव, एवं परिणामों को झेलकर भी इनका अस्तित्व बनाए रखना अपने आप बड़ी चुनौती है । एक ओर धुआंधार विकास की प्रक्रिया में शामिल होने हेतु साधन-साध्य संबंधी विवेक खोकर यंत्रवत वैश्वीकरण की आँधी में अपने आप को झोंक देने की प्रवृत्ति, दूसरी ओर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संविधान द्वारा प्रदत्त लोकतान्त्रिक मूल्यों को स्वीकार करते हुए वर्तमान स्थितियों में इनकी उचित अर्थान्विति न करते हुए स्थूल रूप में इन मूल्यों के प्रयोग की उतावली में हमारे समक्ष ढेर सारे प्रश्न मुँह बाये खड़े हैं । प्रश्नों की इसी कतार में हमारी भाषा और साहित्य के शाश्वत मूल्यों का प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण चुनौती बनकर खड़ा है । विडम्बना यह है कि इनसे जुड़ी समस्त समस्याओं के बीज हमारी दोहरी मानसिकता में ही दबे हैं।

1909 में गाँधी जी ने लिखा था- क्या वे लोग जो अपनी मातृभाषा का अपमान करते हैं, कभी देश का भला कर सकते हैं ? मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता.... जो लोग अपनी भाषा छोड़ देते हैं, वे देशद्रोही हैं और जनता के प्रति विश्वासघात करते हैं... जो युवक यह कहते हैं कि हम अपने विचार मातृभाषा द्वारा नहीं प्रकट कर सकते, उनसे मैं यही निवेदन करूंगा कि आप मातृभाषा के लिए भार-रूप हैं । मातृभाषा की अपूर्णता दूर करने के बदले उसका अनादर करना, उससे हाथ ही धो बैठना, किसी सच्चे सपूत को शोभादायक नहीं । " यह सच है कि आज हजारों नवयुवक अपना कीमती समय अंग्रेजी सीखने में लगा रहे है, जबकि उनके दैनिक जीवन में उसकी आवश्यकता कम ही पड़ती है । वे इस गलतफहमी के शिकार हैं कि ऊंचे दर्जे के विचार अंग्रेजी में ही व्यक्त किए जा सकते हैं या अंग्रेजी झाड़कर आधुनिक होने का दंभ भरा जा सकता है। अंग्रेजी के लादे जाने से राष्ट्र की शक्ति सूख गई है, विद्यार्थियों की आयु क्षीण हो गई है । आज शिक्षा पाना बहुत बड़े खर्चे का काम हो गया है । यदि यही सिलसिला रहा, तो देश की आत्मा का नाश हो जाएगा, नाश हो रहा है । कितने आश्चर्य की बात है कि हम जिसे आत्मा कहते है, आधुनिक पीढ़ी उसे मानसिक संकीर्णता कहती है । भाषा के संदर्भ में आज की पीढ़ी को मैं जब देखती हूँ, तो मेरी कल्पना में प्लास्टिक के अति सुंदर फूलों-पत्तियों से सुसज्जित उस गमले की तस्वीर उभरती है, जो अपने सौंदर्य से आकर्षित तो करती है, किन्तु उसमें न रस है न सुगंध और होगी भी कैसे? पौधा जड़विहीन जो है । मातृभाषा में शिक्षा को मैं वह जलसिंचन मानती हूँ, जो जड़ों को अपनी जमीन पकड़ने में सशक्त भूमिका निभाता है, जो उसके फूलों में खुशबू भरता है और उसकी सुंदरता में प्राकृतिक सहजता समाहित करता है ।

वर्ष 1986 में जब नई शिक्षा-नीति राष्ट्र के सामने रखी गई, तो उसमें सबके लिए समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बात कही गई थी। गिजुभाई बधेका जो प्राथमिक शिक्षा के प्रथम भारतीय नवाचारकर्ता और प्रयोग पुरुष थे, उन्होंने सबसे पहले आनंददायी शिक्षा को पारंपरिक स्कूल में आजमा कर शिक्षा की प्रचलित प्रणाली को झकझोर कर रख दिया था । बाद में भी ज्योतिबा फुले, सावित्री फुले, आंबेडकर, जाकिर हुसैन, महात्मा गाँधी, मौलाना अबुल कलाम से लेकर जगजीवन राम तक, ये सभी हमारी शिक्षा के राष्ट्र-नायक थे, जिन्हें भारतीय बच्चों, किशोरों और युवा शक्ति की जायज चिंता थी । निसंदेह तब मातृभाषा और राष्ट्रभाषा को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था । हमने राजा राममोहन राय के जमाने से जारी हुई अंग्रेजी शिक्षा की स्कूली व्यवस्था अपनी भारतीय शिक्षा के सबसे सुंदर वृक्ष को नष्ट करके अपनाई और 1835 के मैकाले की नीति से लेकर 1946 तक हम कभी बुड्स, कभी हंटर, कभी सार्जेंट तो कभी कर्जन जैसे उपनिवेशवादियों के मॉडलों का वजन ढोते रहे । भारतीय मानस एवं भारत की जरूरत के मुताबिक शिक्षा का कोई प्रारूप हम आज तक विकसित नहीं कर सके ।

डॉ. मीनाक्षी जोशी

मातृभाषा में शिक्षा की आवश्यकता पर विचार करने से पूर्व कुछ प्रश्न मन में उभरते हैं । हमारी शिक्षा यानि क्या ? कैसी शिक्षा ? किनके लिए शिक्षा ? किस उद्देश्य से शिक्षा ? क्या केवल नौकरी के लायक बनने के लिये ? अपनी रोजी-रोटी स्वयं कमा लेने के लिए ? वेतनभोगी बनने के लिए ? गुलामों की तरह नौकर बनने के लिए ? या स्वतंत्र और स्वाभिमानी राष्ट्र के कर्मठ एवं सच्चे नागरिक बनने के लिए जो अपने शरीर, घर, गली, मुहल्ले, सड़क, बिजली, पानी, हवा, खेत-खलिहान, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, बस, रेल, यातायात, पर्यावरण के प्रति कर्तव्य और अधिकारों की चिंता कर सके, उनकी रक्षा कर सके या भीड़ बनकर कभी लाठियों से पिटता रहे, कभी आँसू गैस से आँसू बहाता रहे और कभी गोलियों का शिकार होता रहे। मातृभाषा से शिक्षा की परंपरा को दफना कर हमने अंग्रेजी शिक्षा का जो मॉडल अपनाया, उससे हमने आजाद देश में भी अपनी जिम्मेदारी से रहना इसलिए नहीं सीखा कि उन्होने हमें गुलाम बने रहने की ही शिक्षा दी है । आज की दुनिया में सबसे बड़ी चुनौती संस्कृति के वर्चस्व की है । चूंकि भाषा संस्कृति की परिचायक होती है, इसलिए यह संघर्ष भाषा और संस्कृति दोनों के लिए समान रूप से चुनौती बनी है । सच तो यह है कि संस्कृति और परम्पराएँ ही हमारी शिक्षा, संस्कार, आचरण, व्यवहार, जीवन-पद्धति, रहन-सहन, खान-पान, हमारे सोच-विचार, दृष्टिकोण एवं दूसरे व्यक्तियों से संबंध को गंभीर रूप से प्रभावित करती है ।

वर्तमान में अधिकांशतः अंग्रेजी विश्व के प्रबुद्ध वर्ग की अभिव्यक्ति तथा वैश्विक परिदृश्य में संपर्क की भाषा के रूप में प्रयुक्त की जा रही है । ऐसे में पश्चिमी संस्कृति का वर्चस्व बढ़ता ही जा रहा है । भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए भी मातृभाषा का संरक्षण एवं संवर्धन आवश्यक है । पाश्चात्य सभ्यता के प्रहार से

हमारी मातृभाषाएँ समाप्त तो नहीं हो पाई, पर इसकी दशा और दिशा में अनेक परिवर्तन अवश्य हुए है । तकनीकी और आधुनिक विज्ञान के साथ बाजारवाद ने आज हमें किंकर्तव्यविमूढ़ कर दिया है । हमें अपनी नींव से उखाड़ फेंका है । समझ में नहीं आता कि नींव से हटकर आधुनिकता रूपी आकाश में दिशाहीन उड़ान कब तक भरते रहेंगे ? हमारी अपनी क्या पहचान होगी ? जिस सांस्कृतिक धरातल पर भारत के गौरव का गुणगान पूरी दुनिया करती थी उसके अस्तित्व को कौन बचाएगा ? जब जड़ ही जीवित न रहेगी तो फल-फूल की आशा कौन कर सकता है ? हमने अंग्रेजी शिक्षा के प्रति जो अंधविश्वासपूर्ण सम्मान करना सीखा है, उससे स्वयं और समाज को मुक्ति दिला कर हम एक प्रकार से देश की सेवा कर सकते हैं । लॉर्ड चाइम्सफोर्ड ने यह आशा व्यक्त की है कि अंग्रेजी कुछ ही दिनों में उच्च परिवारों की मातृभाषा बन जाएगी । यह एक दारुण राष्ट्रीय विपत्ति है ।

अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा में कम-से-कम सोलह वर्ष लगते हैं । अनुभवी शिक्षकों की राय है कि यदि इन्हीं विषयों की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जाए, तो अधिक-से-अधिक दस वर्ष लगेंगे । हजारों विद्यार्थियों के छह-छह वर्ष बचने का अर्थ यह होता है कि कई हजार वर्ष जनता को कुछ और कार्य करने के लिए मिल गए । मातृभाषा में शिक्षा न पाने के कारण उनके दिमाग पर अनावश्यक बोझ पड़ता है । परिणामस्वरूप उनमें खोज करने की शक्ति, साहस, धीरज, निर्भयता आदि अन्य गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। एक अंग्रेज ने लिखा है कि मूल लेख और सोखता कागज के अक्षरों में जो भेद है, वही भेद यूरोप के और यूरोप के बाहर के लोगों में है । इस विचार की सच्चाई में अन्य लोगों की अयोग्यता का स्वाभाविक कारण केवल शिक्षा के योग्य माध्यम का चुनाव न होना ही है । मुझे विश्वास है कि यदि हमने कम-से-कम प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा द्वारा पाई होती, तो हमारे बीच एक बार फिर तिलक, गांधी, टैगौर जैसे अनेक महान हस्तियाँ होती । क्या चीन, जापान, रूस आदि देशों के विकास का उदाहरण हमारे लिए अपर्याप्त है ?

गला काट स्पर्धा के इस युग में इस विषय पर केवल बहस या चर्चा करना पर्याप्त नहीं होगा । उपर्युक्त देशों की तरह हमें भी समय के कदम-से-कदम मिलाकर चलना होगा । आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तनों की पहल करनी होगी । समस्याओं के समाधान हेतु निम्नलिखित बिन्दुओं की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ-

1- अभिभावकों को बच्चों में आरंभ से ही अपनी भाषा के प्रति आस्था और लगन का भाव उत्पन्न करना होगा ।

2- मातृभाषा के माध्यम वाले शिक्षा संस्थानों की संख्या में वृद्धि करनी होगी ।

3- इन शालाओं के निर्धारित पाठ्यक्रमों में आधुनिक विषयों का भी समावेश किया जाना चाहिए ।

4- अध्यापन शैली को अधिक-से-अधिक रोचक बनाया जाए ।

5- पाठ्य-पुस्तक उपलब्ध कराने का उत्तरदायित्व शिक्षा संस्थानों को दिया जाना चाहिए ।

6- मातृभाषा में अन्य विविध विषयों की पुस्तकें निरंतर लिखी जाती रहनी चाहिए ।

7- उच्चस्तरीय शिक्षण हेतु योग्य साधनों एवं अध्यापकों का चयन किया जाना चाहिए ।

8- मातृभाषा से अन्य भाषाओं में और अन्य भाषाओं से मातृभाषा में अनुवाद को पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए ।

9- मातृभाषा के मानक रूप एवं व्याकरण विद्वानों की सहायता से निर्धारित किए जाने चाहिए ।

10- मातृभाषा को कंप्यूटर और इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी से भी जोड़ा जाना चाहिए ।

11- मातृभाषा के माध्यम से रोजगार प्राप्ति के अवसर उपलब्ध होना चाहिए ।

12- मातृभाषा, प्रादेशिक भाषाओं के विद्यालयों की स्थापना और उनका समुचित विकास का उत्तरदायित्व सरकार को पूरी गंभीरता से निभाना चाहिए ।

गौरतलब तथ्य यह है कि संस्कार और संस्कृति का प्रश्न केवल सामाजिक प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं है । इसका बहुत गहरा संबंध मनुष्य के अस्तित्व, उसकी प्रकृति, प्रवृत्ति, विचारधारा, दृष्टिकोण, भावना, विश्वास और निर्णय लेने की योग्यता से भी होता है । इस प्रकार वह धरातल के विभिन्न सतहों पर सम्पूर्ण मानव जाति के सरोकारों को समेटते हुए सार्वभौमिक आकार ले लेती है । हमें विचार करना होगा कि एक बहुभाषी देश में किस प्रकार सभी मातृभाषाओं का सह-अस्तित्व की समानताओं की तलाश की जाए जो रचनात्मक प्रक्रिया को तीव्र एवं समयानुकूल बना सके । यदि भाषा की अस्मिता और विभिन्नता को संहारात्मक या हिंसात्मक तौर पर स्थापित करने की कोशिश की जाएगी, तो यह स्थिति सबके लिए हानिकारक होगी ।

यह सच है कि सृजनात्मक ऊर्जा के उत्कर्ष की कोई सीमा नहीं है । नई शताब्दी में क्या होने जा रहा है, इसके बारे में कोई भविष्य वाणी करना मुश्किल है । लेकिन हम इतना तो कह ही सकते हैं कि कोई भी समाज, संस्कृति, साहित्य, कला या दर्शन अतीत की जीवंत परम्पराओं के शव पर भविष्य के संभावित संसार में विचार और सृजन की मशाल नहीं जला सकता । यदि हम नई पीढ़ी में नए संस्कारों, सरोकारों और उनकी चेतना की परवरिश करते हुए भाषा, कला तथा साहित्य में सौंदर्य और सच्चाई की बहाली कर सकते हैं, तो हम उचित-अनुचित के संघर्ष से निकलकर भविष्य के रू-ब-रू खड़े हो सकते हैं ।

-डॉ. मीनाक्षी जोशी
'मधुरा', रामायणनगरी, भंडारा (महाराष्ट्र)

कृत्रिम मेधा और भारत की भाषाई संप्रभुता के विविध आयाम

डॉ. शैलेश शुक्ला

मानव सभ्यता एक ऐसे दौर में प्रवेश कर चुकी है, जहाँ कृत्रिम मेधा केवल तकनीकी उपकरण नहीं रह गई, बल्कि ज्ञान, शासन, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, संचार और संस्कृति की दिशा तय करने वाली निर्णायक शक्ति बनती जा रही है । दुनिया के अनेक देशों में कृत्रिम मेधा आधारित प्रणालियां प्रशासन, चिकित्सा, शिक्षा, न्याय, सुरक्षा, उद्योग और मीडिया के क्षेत्रों में तेजी से उपयोग की जा रही हैं। भारत भी इस परिवर्तन के केंद्र में खड़ा है । लेकिन भारत के सामने चुनौती केवल तकनीकी विकास की नहीं है, उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उसकी भाषाई संप्रभुता का है । भारत विश्व का सबसे बड़ा भाषाई लोकतंत्र है । यहाँ संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को मान्यता प्राप्त है, जबकि जनगणना और भाषा वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार देश में सैकड़ों भाषाएँ और हजारों बोलियाँ जीवित हैं । हिन्दी, बंगाली, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, असमिया, संस्कृत, मैथिली, कोंकणी, संथाली और अन्य भाषाएँ केवल संचार का माध्यम नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता की सांस्कृतिक चेतना की वाहक हैं ।

ऐसे समय में जब कृत्रिम मेधा आधारित प्रणालियां वैश्विक ज्ञान संरचना का निर्माण कर रही हैं, यह प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि क्या भारतीय भाषाएँ इस नई डिजिटल दुनिया में सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर पाएँगी, या फिर अंग्रेजी केंद्रित कृत्रिम मेधा मॉडल भारत की भाषाई विविधता को धीरे-धीरे हाशिए पर धकेल देंगे । आज विश्व की अधिकांश बड़ी कृत्रिम मेधा प्रणालियां अंग्रेजी आधारित डेटा पर प्रशिक्षित हैं । इन प्रणालियों की संरचना, भाषा-समझ, सांस्कृतिक संदर्भ और निर्णय प्रक्रिया पर पश्चिमी भाषाई व वैचारिक प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । यदि भारत केवल विदेशी कृत्रिम मेधा प्रणालियों पर निर्भर रहता है, तो भविष्य में भारतीय भाषाएँ तकनीकी रूप से निर्भर और कमजोर हो सकती हैं । यही कारण है कि 'भाषाई संप्रभुता' का प्रश्न राष्ट्रीय संप्रभुता से जुड़ा विषय बनता जा रहा है ।

भाषाई संप्रभुता का अर्थ केवल यह नहीं कि कोई भाषा जीवित रहे, बल्कि यह भी है कि वह आधुनिक ज्ञान, विज्ञान, प्रशासन और डिजिटल संरचनाओं में प्रभावी रूप से उपस्थित हो । यदि किसी भाषा की उपस्थिति कृत्रिम मेधा आधारित मंचों पर कमजोर होगी, तो धीरे-धीरे उस भाषा की सामाजिक और आर्थिक उपयोगिता भी प्रभावित होने लगेगी । भारत में पिछले कुछ वर्षों में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास हुए हैं । भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अंतर्गत विकसित 'भाषिणी' पहल भारतीय भाषाओं के लिए कृत्रिम मेधा आधारित भाषा संरचना तैयार करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम मानी जा रही है । इस पहल का उद्देश्य भारतीय भाषाओं में वाणी पहचान, अनुवाद, वाणी संश्लेषण और बहुभाषीय संवाद प्रणाली विकसित करना है । हाल में 'वॉइस एआई स्टैक' जैसे बहुभाषीय तकनीकी मंच भी प्रस्तुत किए गए, जिनका लक्ष्य भारतीय भाषाओं में संवाद आधारित कृत्रिम मेधा प्रणालियों को मजबूत करना है । फरवरी 2026 में भारत में आयोजित कृत्रिम मेधा प्रभाव सम्मेलन में प्रधानमंत्री के भाषण का 11 भारतीय भाषाओं में तत्काल अनुवाद और सांकेतिक भाषा में प्रस्तुतीकरण यह दर्शाता है कि भारतीय भाषाओं को कृत्रिम मेधा से जोड़ने की दिशा में तकनीकी क्षमता विकसित हो रही है ।

इसके अतिरिक्त भारत में स्वदेशी कृत्रिम मेधा मॉडल विकसित करने के प्रयास भी तेज हुए हैं । 'भारत जेनएआई' और अन्य स्वदेशी मॉडल 22 भारतीय भाषाओं में संवाद क्षमता विकसित करने की दिशा में कार्यरत बताए गए हैं । इसी प्रकार 'इंडियन एआई रिसर्च ऑर्गनाइजेशन' जैसी पहलों का उद्देश्य कृत्रिम मेधा के क्षेत्र में भारत की तकनीकी आत्म निर्भरता को मजबूत करना है । लेकिन केवल तकनीकी घोषणाएं पर्याप्त नहीं हैं । भारत के सामने वास्तविक चुनौती कहीं अधिक जटिल है । सबसे पहली चुनौती डेटा की है । कृत्रिम मेधा प्रणालियां जितने बड़े और गुणवत्तापूर्ण डेटा पर प्रशिक्षित होती हैं, उनकी भाषा क्षमता उतनी ही मजबूत होती है । अंग्रेजी भाषा के लिए विशाल डिजिटल सामग्री उपलब्ध है, जबकि अधिकांश भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाले डिजिटल कॉर्पस की कमी है । अनेक भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक, तकनीकी और प्रशासनिक शब्दावली का पर्याप्त डिजिटलीकरण अब भी नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त, भारतीय भाषाओं की विविध लिपियाँ, उच्चारण, क्षेत्रीय बोलियाँ और सांस्कृतिक संदर्भ कृत्रिम मेधा प्रशिक्षण को और जटिल बनाते हैं । हिन्दी का प्रयोग उत्तर भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग रूपों में होता है । तमिल, बंगाली, मराठी, उड़िया या कश्मीरी जैसी भाषाओं की अपनी विशिष्ट व्याकरणिक संरचनाएँ हैं। यदि कृत्रिम मेधा प्रणालियाँ इन भाषाई विविधताओं को सही ढंग से नहीं समझेंगी, तो वे सतही और त्रुटिपूर्ण परिणाम देंगी ।

भारतीय भाषाओं के संदर्भ में एक गंभीर खतरा 'डिजिटल उपनिवेशवाद' का भी है । यदि भारतीय समाज पूरी तरह विदेशी कृत्रिम मेधा मंचों पर निर्भर हो जाता है, तो भारतीय भाषाओं का डेटा, सांस्कृतिक व्यवहार, सामाजिक अभिव्यक्तियाँ और ज्ञान संसाधन विदेशी तकनीकी कंपनियों के नियंत्रण में जा सकते हैं । इससे केवल आर्थिक निर्भरता ही नहीं बढ़ेगी, बल्कि भाषाई और सांस्कृतिक स्वायत्तता भी प्रभावित हो सकती है । कृत्रिम मेधा केवल भाषा का अनुवाद नहीं करती; वह विचारों की संरचना भी प्रभावित

करती है । यदि किसी भाषा में उपलब्ध कृत्रिम मेधा सामग्री सीमित या पक्षपातपूर्ण होगी, तो उस भाषा में ज्ञान निर्माण भी प्रभावित होगा। इसलिए भाषाई संप्रभुता का अर्थ ज्ञान संप्रभुता से भी जुड़ा हुआ है । कृत्रिम मेधा आधारित सेवाएँ केवल अंग्रेजी केंद्रित रहेंगी, तो डिजिटल असमानता और बढ़ सकती है । दूसरी ओर यदि भारतीय भाषाओं में मजबूत कृत्रिम मेधा प्रणाली विकसित होती है, तो शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय और प्रशासनिक सेवाओं तक पहुँच व्यापक हो सकती है । भारतीय भाषाओं के लिए मशीन अनुवाद प्रणाली विकसित करने की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण शोध हुए हैं । 'इंडिकट्रांस' जैसे शोध मॉडल 22 भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद क्षमता विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं । इसी प्रकार भारतीय भाषाओं के लिए भाषण पहचान और वाणी आधारित प्रणालियों पर भी अनुसंधान बढ़ा है । एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू सांस्कृतिक संदर्भों की समझ का है । यदि कृत्रिम मेधा प्रणालियाँ भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों को ठीक से नहीं समझेंगी, तो वे गलत निष्कर्ष या अनुचित प्रतिक्रियाएँ दे सकती हैं । इसी कारण भारतीय सांस्कृतिक ज्ञान पर आधारित मूल्यांकन तंत्र विकसित करने के प्रयास भी किए जा रहे हैं ।

भाषाई संप्रभुता का एक और आयाम शिक्षा से जुड़ा है । नई शिक्षा नीति में मातृभाषा आधारित शिक्षा पर जोर दिया गया है । लेकिन यदि कृत्रिम मेधा आधारित शिक्षा मंच अंग्रेजी प्रधान बने रहे, तो मातृभाषा आधारित शिक्षा की अवधारणा कमजोर पड़ सकती है । इसलिए आवश्यक है कि भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण डिजिटल शैक्षिक सामग्री और कृत्रिम मेधा आधारित शिक्षण प्रणालियाँ विकसित की जाएँ । मीडिया और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कृत्रिम मेधा का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है । समाचार लेखन, अनुवाद, वीडियो निर्माण और सामग्री वितरण में कृत्रिम मेधा का प्रयोग बढ़ रहा है । यदि भारतीय भाषाओं के मीडिया संस्थान तकनीकी रूप से सक्षम नहीं हुए, तो वैश्विक मंचों का वर्चस्व बढ़ सकता है । इससे स्थानीय भाषाई पत्रकारिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है ।

न्याय व्यवस्था में भी भाषाई संप्रभुता का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। भारत में करोड़ों लोग न्यायिक प्रक्रियाओं को इसलिए ठीक से नहीं समझ पाते, क्योंकि अधिकांश कानूनी दस्तावेज अंग्रेजी में होते हैं । यदि कृत्रिम मेधा आधारित अनुवाद और वाणी प्रणालियाँ भारतीय भाषाओं में प्रभावी रूप से विकसित होती हैं, तो न्याय तक पहुँच अधिक लोकतांत्रिक हो सकती है । स्वास्थ्य क्षेत्र में भी मातृभाषा आधारित कृत्रिम मेधा प्रणालियाँ अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं । भारत जैसे बहुभाषीय देश में मरीजों और डॉक्टरों के बीच भाषा संबंधी बाधाएँ उपचार को प्रभावित करती हैं । बहुभाषीय कृत्रिम मेधा प्रणाली स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक समावेशी बना सकती है । लेकिन इन संभावनाओं के साथ अनेक नैतिक प्रश्न भी जुड़े हुए हैं । कृत्रिम मेधा प्रणालियाँ यदि पक्षपातपूर्ण डेटा पर आधारित होंगी, तो वे भाषाई और सामाजिक भेदभाव को बढ़ा सकती हैं । कुछ भाषाओं को अधिक प्राथमिकता और कुछ को उपेक्षा मिलने का खतरा भी बना रहेगा । इसलिए भारत को केवल तकनीकी विकास नहीं, बल्कि भाषाई न्याय आधारित कृत्रिम मेधा नीति विकसित करनी होगी । ऐसी नीति जिसमें सभी भारतीय भाषाओं को समान अवसर मिले । केवल बड़ी भाषाओं पर केंद्रित मॉडल पर्याप्त नहीं होंगे । छोटी और जनजातीय भाषाओं को भी डिजिटल संरचना में स्थान देना आवश्यक है ।

भाषाई संप्रभुता का संबंध साइबर सुरक्षा और डेटा सुरक्षा से भी है । यदि भारतीय भाषाओं का विशाल डेटा विदेशी सर्वरों और कंपनियों के नियंत्रण में रहेगा, तो राष्ट्रीय सुरक्षा और सांस्कृतिक स्वायत्तता से जुड़े प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं । इसलिए स्वदेशी डेटा अवसंरचना और भारतीय नियंत्रण वाले कृत्रिम मेधा मंचों का विकास रणनीतिक दृष्टि से आवश्यक है । आज विश्व स्तर पर कृत्रिम मेधा की प्रतिस्पर्धा केवल तकनीकी नहीं, बल्कि भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा भी बन चुकी है । अमेरिका, चीन, यूरोप और अन्य शक्तियां कृत्रिम मेधा को भविष्य की निर्णायक शक्ति मान रही हैं । ऐसे समय में भारत के लिए केवल उपभोक्ता बनकर रह जाना पर्याप्त नहीं होगा । भारत को अपनी भाषाओं, संस्कृति और सामाजिक संरचना के अनुरूप स्वतंत्र कृत्रिम मेधा पारिस्थितिकी विकसित करनी होगी ।

भारतीय भाषाओं की शक्ति केवल संख्या में नहीं, बल्कि उनकी सांस्कृतिक गहराई में भी है । संस्कृत से लेकर तमिल और हिन्दी से लेकर बंगाली तक भारतीय भाषाओं में विशाल साहित्य, दर्शन, इतिहास और ज्ञान परंपरा मौजूद है । यदि कृत्रिम मेधा इन भाषाओं से जुड़ती है, तो भारत विश्व को एक वैकल्पिक ज्ञान दृष्टि भी दे सकता है । अंततः कृत्रिम मेधा और भाषाई संप्रभुता का प्रश्न केवल तकनीक का प्रश्न नहीं है । यह भारत की सांस्कृतिक स्वतंत्रता, ज्ञान स्वायत्तता और लोकतांत्रिक समावेशन का प्रश्न है । यदि भारत अपनी भाषाओं को कृत्रिम मेधा युग में मजबूत स्थान दिलाने में सफल होता है, तो वह केवल तकनीकी महाशक्ति ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक रूप से आत्मनिर्भर राष्ट्र भी बन सकेगा । लेकिन यदि भारतीय भाषाएँ डिजिटल संरचना में पीछे रह गईं, तो भविष्य की ज्ञान व्यवस्था में उनका स्थान कमजोर हो सकता है । इसलिए समय की माँग यही है कि भारत कृत्रिम मेधा को केवल बाजार और उद्योग की दृष्टि से न देखे, बल्कि उसे भाषाई और सांस्कृतिक संप्रभुता के राष्ट्रीय अभियान के रूप में विकसित करे । क्योंकि भविष्य में वही राष्ट्र वास्तविक रूप से शक्तिशाली होगा, जिसकी भाषाएँ कृत्रिम मेधा की दुनिया में जीवित, सक्रिय और प्रभावशाली होंगी।

-डॉ. शैलेश शुक्ला
सलाहकार संपादक, नई दुनिया एवं गौड़सन्स टाइम्स
आशियाना, लखनऊ-226012 (उत्तर प्रदेश)

रिपोर्ट

परिचर्चा – अपने संविधान को जानें

महाराजा अग्रसेन इंस्टीटड्यूट ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज में 'अपने संविधान को जानें' परिचर्चा का आयोजन सम्पन्न

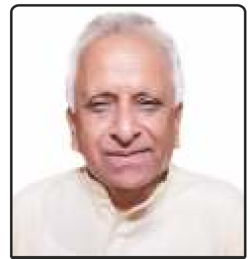

विजय कुमार शर्मा

डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एवं महाराजा अग्रसेन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज, रोहिणी के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 27 मार्च 2026 को 'अपने संविधान को जानें' विषय पर परिचर्चा का आयोजन किया गया । कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्ज्वलन और राष्ट्रगीत के साथ हुआ । यह कार्यक्रम प्रो. रजनी मल्होत्रा ढींगरा, निदेशक, महाराजा अग्रसेन इंस्टी. मैनेजमेंट. स्टडीज के सानिध्य में सम्पन्न हुआ । इस कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री सुधाकर पाठक, अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी ने की, साथ ही मंच पर मुख्य अतिथि के रूप में श्री आकाश पाटील निदेशक, डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र और विशिष्ट वक्ता के रूप में श्री उदय सिंह राठौड, निदेशक, कैरेट लॉन एकेडेमी एवं श्री अंकित देव 'अर्पण' साइबर लॉयर एवं संविधान अध्येता मौजूद रहे । संस्थान की निदेशक प्रो. ढींगरा ने परिचर्चा की पृष्ठभूमि तैयार करते हुए बताया कि कैसे, बल्कि नैतिकता और राष्ट्रवाद के आदर्शों को साथ जोड़कर एक सशक्त और जिम्मेदार नागरिक बना जा सकता है।

श्री सुधाकर पाठक ने संविधान सभा के भीतर हुए गहन वैचारिक मंथन और राष्ट्र व धर्म के उत्कृष्ट समन्वय से तैयार हुए भारतीय संविधान की विकास यात्रा को विद्यार्थियों के समक्ष रखा । श्री आकाश पाटिल ने अपने ओजस्वी उद्‌बोधन में 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 2026 तक की ऐतिहासिक यात्रा का सजीव चित्रण किया। उन्होंने संविधान निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति के सूक्ष्म योगदान, इसके ऐतिहासिक, वर्तमान और भविष्य के परिप्रेक्ष्य पर विस्तृत चर्चा की । श्री उदय सिंह राठौड़ ने संविधान के 'बेसिक स्ट्रक्चर डॉक्ट्रिन' (मूल संरचना सिद्धांत) की महत्ता को समझाते हुए कहा कि यही सिद्धांत भारतीय लोकतंत्र को उसकी सबसे बड़ी ताकत प्रदान करता है ।

आधुनिक युग की चुनौतियों पर बात करते हुए अंकित देव 'अर्पण' ने साइबर लॉ और निजता के अधिकार के बीच के संबंधों को स्पष्ट किया । इसके अतिरिक्त, 'निबंध लेखन प्रतियोगिता' के विजेताओं को मंच पर अतिथियों द्वारा पुरस्कृत किया गया । साथ ही, आयोजन समिति में सम्मिलित प्राध्यापकों को सम्मानित किया गया । इस आयोजन में 100 से अधिक छात्रों ने भाग लिया । कार्यक्रम का समापन प्रो. (डॉ.) मंजू गुप्ता विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग के धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ ।

'अपने संविधान को जानें' परिचर्चा के कुछ चित्र

रिपोर्ट

डिजिटल मीडिया : चुनौतियाँ, प्रभाव और सामाजिक उत्तरदायित्त्व विषय पर संगोष्ठी का आयोजन संपन्न

सरोज शर्मा

25 अप्रैल, 2026 को राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी, तिनका तिनका फाउंडेशन एवं राजधानी कॉलेज के संयुक्त तत्त्वावधान में 'डिजिटल मीडियाः चुनौतियाँ, प्रभाव और सामाजिक उत्तरदायित्त्व' विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन संपन्न हुआ ।

कार्यक्रम के प्रथम सत्र में इंडिया हैबिटेट सेंटर के निदेशक प्रो.के.जी. सुरेश, मीडिया शिक्षक एवं जेल सुधारक प्रो. वर्तिका नंदा, राजधानी कॉलेज के प्राचार्य प्रो. दर्शन पाण्डेय, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक, डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र के निदेशक कर्नल आकाश पाटील, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के सहायक प्राध्यापक डॉ. विपुल सुनील मंचासीन रहे । दीप प्रज्ज्वलन, सामूहिक राष्ट्रीय गीत और राजधानी कॉलेज के कुलगीत के साथ संगोष्ठी को विधिवत रूप से प्रारंभ किया गया । मंचासीन अतिथियों को अंगवस्त्र और पौधें भेंट कर सम्मानित किया गया ।

राजधानी कॉलेज के प्राचार्य डॉ. दर्शन पाण्डेय ने अपने स्वागत उद्बोधन में कार्यक्रम की रूपरेखा, उसकी गंभीरता और प्रासंगिकता पर सारगर्भित विचार व्यक्त किए । मुख्य वक्ता के रूप में प्रो.के.जी सुरेश ने कहा कि सोशल मीडिया ने हमारे जीवन में अमूलचूल परिवर्तन ला दिया है । यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है, जिसका उपयोग आज 5 वर्ष के बच्चे से लेकर 95 वर्ष तक के बुजुर्ग कर रहे हैं । उन्होंने कहा कि वर्तमान परिदृश्य में पड़ोसी देशों में हो रहे सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों में सोशल मीडिया एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में उभरा है ।

मीडिया शिक्षक एवं जेल सुधारक प्रो. वर्तिका नंदा ने कहा कि डिजिटल मीडिया ने हमें सुविधाएँ तो दी हैं, किंतु इसने हमारी संतुष्टि को भी प्रभावित किया है । उन्होंने डिजिटल मीडिया की तुलना एक 'खूबसूरत बंदर' से करते हुए कहा कि यदि यह हमारे नियंत्रण में रहा तो अत्यंत उपयोगी है, अन्यथा यह हानिकारक सिद्ध हो सकता है । डॉ. अंबेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र के निदेशक कर्नल आकाश पाटील ने सोशल मीडिया की तुलना एक द्विधारी तलवार से की । उन्होंने कहा कि इसका उपयोग किसी के सर्वनाश के लिए भी किया जा सकता है और भलाई के लिए भी । यह उपयोग करने वाले की नीयत पर निर्भर करता है ।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने कहा कि सोशल मीडिया ने सबसे ज्यादा नुकसान भारतीय भाषाओं और संस्कृति का किया है । इसका अत्यधिक उपयोग एक लत का रूप लेता जा रहा है, जो चिंता का विषय है । डिजिटल मीडिया पर प्रयुक्त भाषा-शैली, भाव-भंगिमा और अमर्यादित अभिव्यक्तियाँ युवाओं एवं समाज पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं । इससे बच्चों के सोचने-समझने और नैतिक आचरण पर भी नकारात्मक असर पड़ रहा है । ऐसे समय में यह हमारा दायित्त्व है कि हम डिजिटल माध्यमों का सदुपयोग करते हुए नई पीढ़ी में नैतिक मूल्यों एवं संवेदनशीलता का विकास करें ।

संगोष्ठी के द्वितीय सत्र में विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं शिक्षकों ने विषय से संबंधित अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किए । इस सत्र की अध्यक्षता प्रो. वर्तिका नंदा ने की तथा उनके साथ प्रो. सुरुचि शिरीष मंच पर उपस्थित रहीं । कुछ शोध-पत्रों का वाचन ऑनलाइन माध्यम से भी किया गया । कार्यक्रम के समापन पर उपस्थित प्रतिभागियों को प्रमाण-पत्र वितरित किए गए ।

संगोष्ठी के सफल आयोजन में राजधानी कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो. जसवीर त्यागी एवं हिन्दी साहित्य परिषद् के अध्यक्ष प्रो. महेंद्र सिंह की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही । कार्यक्रम का संचालन श्री शुभम सिंह ने किया । इस अवसर पर हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के पदाधिकारियों में सुश्री सरोज शर्मा, श्री विनोद पाराशर, डॉ. वनीता शर्मा, सुश्री सुषमा भंडारी तथा सुश्री प्रकाश कंवर की विशेष उपस्थिति रही ।

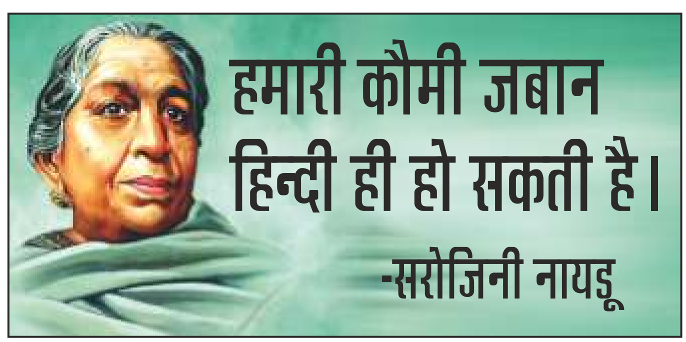

डिजिटल मीडिया : चुनौतियाँ, प्रभाव और सामाजिक उत्तरदायित्व विषय पर संगोष्ठी के चित्र

रिपोर्ट

लक्ष्मीबाई कॉलेज में 'अपने संविधान को जानें' परिचर्चा का आयोजन सम्पन्न

गरिमा संजय

मंगलवार, 28 अप्रैल 2026 को डॉ. अम्बेडकर अंतरराष्ट्रीय केंद्र, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एवं लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में भारत सरकार द्वारा घोषित 'हमारा संविधान – हमारा स्वाभिमान' अभियान के अंतर्गत 'अपने संविधान को जानें' विषय पर परिचर्चा के साथ प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

इस परिचर्चा की अध्यक्षता लक्ष्मीबाई कॉलेज की प्राचार्या प्रो. (डॉ.) लता शर्मा ने की। कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में राजनीति विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. सुधीर कुमार सिंह, विशिष्ट वक्ता के रूप में लेखक एवं संपादक डॉ. राकेश पांडेय मंचासीन रहे। सूत्रधार की भूमिका में दर्शन विभाग, मिरांडा हाउस के प्राध्यापक डॉ. अनिकेत जायसवाल रहे। मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. अम्बेडकर अंतरराष्ट्रीय केंद्र के निदेशक कर्नल श्री आकाश पाटील और विशिष्ट अतिथि के रूप में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक मंचासीन रहे। परिचर्चा के अतिरिक्त प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता में विद्यार्थियों की भूमिका सक्रिय रही। कार्यक्रम के अंत में प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को सम्मानित किया गया और परिचर्चा में सम्मिलित सभी विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र दिए गए।

लक्ष्मीबाई कॉलेज में 'अपने संविधान को जानें' परिचर्चा के कुछ चित्र

रिपोर्ट

विश्व पर्यावरण दिवस पर 'प्रकृति: ए पोएटिक मंथन' काव्य गोष्ठी एवं लघु नाट्य प्रस्तुति।

शुक्रवार, 5 जून, 2026 को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र एवं हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के संयुक्त तत्त्वावधान में 'प्रकृति : ए पोएटिक मंथन' विषय पर एक काव्य गोष्ठी एवं लघु नाट्य प्रस्तुतियों का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम का शुभारंभ स्वागत गीत एवं दीप प्रज्ज्वलन के साथ हुआ। अतिथि देवो भव: की पारंपरिक संस्कृति के अनुरूप स्मृति चिह्न, अंगवस्त्र, उपहार एवं हरे-भरे पौधों से अतिथियों का स्वागत किया गया। डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र के निदेशक श्री आकाश पाटील के मार्गदर्शन में आयोजित कार्यक्रम में मंचासीन अतिथियों के रूप में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक, प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य कवि श्री विनीत पाण्डेय, सुविख्यात कवयित्री डॉ. भावना तिवारी, डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र की पदाधिकारी डॉ. स्वाति एस. मिश्रा, संस्कृति मंत्रालय की पदाधिकारी डॉ. ज्योत्सना शर्मा की गरिमामयी उपस्थिति रही। मंचासीन अतिथियों ने पर्यावरण संरक्षण, जल संरक्षण, बढ़ते तापमान, वैश्विक युद्ध का पर्यावरण पर प्रभाव, विद्यालयी स्तर पर पर्यावरण जागरूकता, नई पीढ़ी में वृक्षारोपण संस्कृति आदि विषयों पर अपने सारगर्भित उद्बोधन दिए।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के पदाधिकारी श्री विनोद पाराशर के कुशल संचालन में दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों, वरिष्ठ कवियों एवं साहित्यकारों ने पर्यावरण संरक्षण एवं मानव-जीवन में प्रकृति के महत्व पर केन्द्रित विषय परक रचनाओं का पाठ किया। काव्य गोष्ठी के साथ-साथ प्राकृतिक प्रकोप एवं पर्यावरण संरक्षण पर आधारित लघु नाटकों का भी मंचन हुआ। राजकीय उच्चतर माध्यमिक बालिका विद्यालय, दयालपुर एवं देव समाज मॉडर्न स्कूल, नेहरू नगर के छात्रों के अभिनय कौशल और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता ने सभी का मन मोह लिया।

सुषमा भण्डारी

कार्यक्रम के समापन पर विद्यालयों के छात्रों एवं शिक्षकों को स्मृति-चिह्न भेंट कर सम्मानित किया गया। प्रतिभागी कवियों को जूट बैग एवं पौधे प्रदान कर सम्मानित किया गया। डॉ. स्वाति एस. मिश्रा के धन्यवाद ज्ञापन के बाद कार्यक्रम का समापन हुआ। कार्यक्रम का कुशल संयोजन सुश्री महिमा एवं संचालन श्री सौरभ ने किया।

इस अवसर पर अकादमी के पदाधिकारी सर्वश्री/श्रीमती विजय शर्मा, सुषमा भंडारी, वनिता शर्मा, गरिमा संजय, राजकुमार श्रेष्ठ, ध्रुव शिवहरे, सोनिया अरोड़ा, प्रकाश कंवर की विशेष उपस्थिति रही। यह आयोजन न केवल साहित्य और संस्कृति का सुंदर संगम बना, बल्कि समाज में पर्यावरण के प्रति जागरूकता फैलाने की दिशा में एक सार्थक एवं प्रेरणादायी प्रयास सिद्ध हुआ।

विश्व पर्यावरण दिवस पर 'प्रकृति: ए पोएटिक मंथन' काव्य गोष्ठी एवं लघु नाट्य के कुछ चित्र

डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र

(सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार)

एवं

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित संस्था)

के संयुक्त तत्वावधान में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली-एनसीआर की
सामाजिक-साहित्यिक संस्थाओं एवं साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादकों का

दो दिवसीय सम्मेलन एवं सम्मान समारोह

प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं

प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि
5 अगस्त, 2026

आयोजन तिथि	समय	आयोजन स्थान
11-12 अगस्त, 2026	प्रातः 10 बजे	डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र, जनपथ, नई दिल्ली

डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र

(सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार)

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित संस्था)

के संयुक्त तत्वावधान में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की

सामाजिक-साहित्यिक संस्थाओं का समागम एवं सम्मान समारोह

संवाद विषय

सामाजिक सौहार्द एवं सांस्कृतिक समरसता बनाए रखने में निजी संस्थाओं की भूमिका

तिथि	समय	स्थान
मंगलवार, 11 अगस्त, 2026	प्रातः 10.00 बजे	डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र, जनपथ, दिल्ली

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली जैसे बहुसांस्कृतिक क्षेत्र में सक्रिय संस्थाओं की पहचान करने, उनके कार्यों को रेखांकित करने, उनकी उपलब्धियों को सम्मानित करने तथा संस्थाओं के बीच वैचारिक विमर्श एवं संवाद स्थापित करने के उद्देश्य से सामाजिक-साहित्यिक संस्थाओं का एक दिवसीय 'समागम एवं सम्मान समारोह' कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा है। अतः दिल्ली-एनसीआर में सक्रिय संस्थाओं से इस गरिमामयी आयोजन में भागीदारी करने हेतु प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं।

प्रविष्टि भेजने की नियमावली

1. यह योजना केवल दिल्ली-एनसीआर की सामाजिक-साहित्यिक संस्थाओं के लिए हैं।
2. संस्था का कार्यक्षेत्र राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCR) दिल्ली होना चाहिए।
3. प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि 5 अगस्त, 2026 है।
4. भागीदारी के लिए विवरण एवं सहमति निम्नलिखित ई-मेल पर भेजी जा सकती है।

प्रविष्टि भेजने का प्रारूप -

1. संस्था का नाम:
2. पता:
3. ई-मेल पता:
4. कार्यक्षेत्र:
5. स्थापना वर्ष:
6. पंजीकरण संख्या:(यदि संस्था पंजीकृत है)
7. संस्था के दो पदाधिकारियों के नाम,पद और मोबाइल नंबर

प्रविष्टि भेजने के लिए ईमेल:
hindustanibhashaakadami@gmail.com
संपर्क सूत्र: 9873556781, 9968097816

डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र

(सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार)

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित संस्था)

के संयुक्त तत्वावधान में

'साहित्यिक पत्रिका संपादक सम्मेलन एवं सम्मान समारोह

संवाद विषय

वर्तमान दौर में साहित्यिक पत्रिकाओं की चुनौतियाँ और भविष्य

तिथि	समय	स्थान
बुधवार, 12 अगस्त, 2026	प्रातः 10.00 बजे	डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र, जनपथ, दिल्ली

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली से नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली साहित्यिक पत्रिकाओं के योगदान को रेखांकित करने, वर्तमान साहित्यिक पत्रिकाओं की चुनौतियों पर विचार करने तथा उत्कृष्ट संपादन कार्य को सम्मानित करने के उद्देश्य से एक 'साहित्यिक पत्रिका संपादक सम्मेलन, विचार गोष्ठी एवं सम्मान समारोह' का आयोजन किया जा रहा है। इस महत्वपूर्ण आयोजन का हिस्सा बनने और सम्मान समारोह हेतु अपनी प्रविष्टि भेजने के लिए हम दिल्ली एनसीआर (जिसमें दिल्ली के साथ-साथ नोएडा, ग्रेटर नोएडा, गाजियाबाद, फरीदाबाद, गुरुग्राम आदि क्षेत्र शामिल हैं) की साहित्यिक पत्रिकाओं (त्रैमासिक, मासिक, छमाही) के संपादकों को सादर आमंत्रित करते हैं।

प्रविष्टि भेजने की नियमावली

1. पत्रिका का प्रकाशन राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCR) दिल्ली से होना चाहिए।
2. पत्रिका का आर.एन.आई. (RNI) पंजीकरण या आई.एस.एस.एन. (ISSN) नंबर होना चाहिए।
3. संपादक का परिचय और पत्रिका का विवरण ई-मेल के माध्यम से भी साझा किया जा सकता है।
4. यदि संभव हो तो कार्यक्रम दिवस पर पत्रिका की दो प्रतियाँ प्रदर्शनी हेतु साथ ले आएँ।
5. प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि 5 अगस्त, 2026 है।

प्रविष्टि भेजने का प्रारूप

1. पत्रिका का नाम:
2. पता:
3. ईमेल पता:
4. पंजीकरण संख्या:
5. संपादक/उपसंपादक का नाम व दूरभाष

प्रविष्टि भेजने के लिए ई-मेल : hindustanibhashaakadami@gmail.com
संपर्क सूत्र: 9873556781, 9968097816

RNI No. : DELHIN/2017/73904

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित संस्था)

पंजीकृत कार्यालय : म.नं. 3675, राजा पार्क, शकूरबस्ती, दिल्ली-110034
दूरभाष : 09873556781, 09968097816
E-mail : info@hindustanibhashaakadami.com
hindustanibhashabharati@gmail.com
Website : www.hindustanibhashaakadami.com